UGC Approved Research Journal No. 47816
पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/9510

ISSN : 2456-8856
डाक पंजीकृत क्रमांक 204/2018-2020 उज्जैन (म.प्र.)

Peer Reviewed Bilingual Monthly International Research Journal

आश्वस्त

वर्ष 22, अंक198, 199,200(संयुक्तांक)

अप्रैल, मई, जून2020

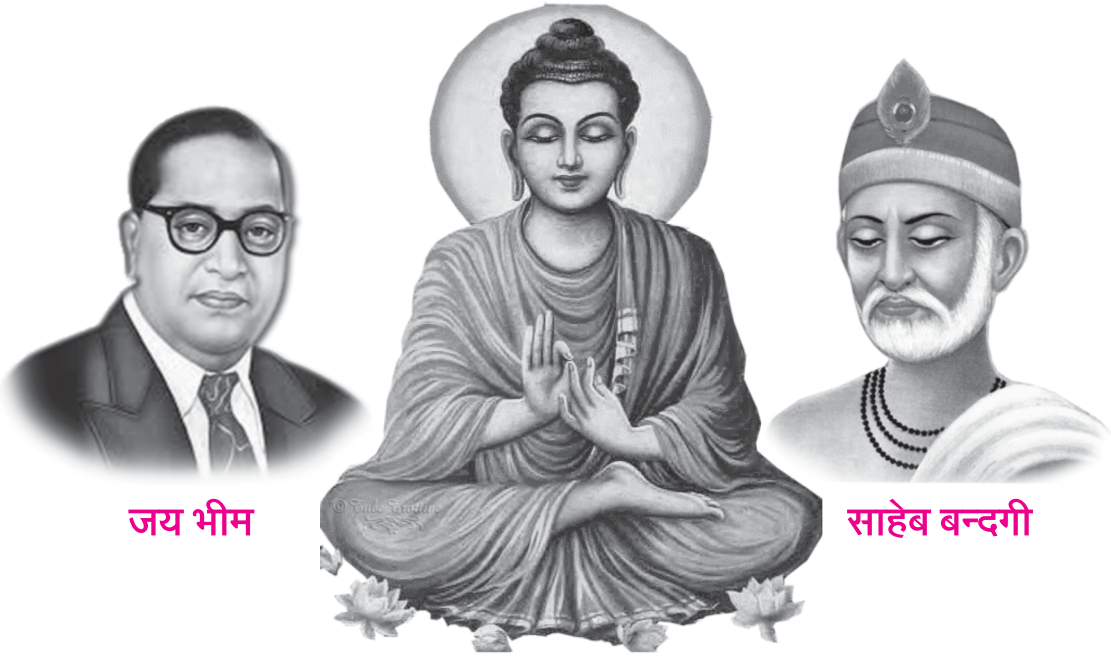

जय भीम

साहेब बन्दगी

नमो बुद्धाय

संपादक – डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्टीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 22 अंक 198, 199, 200
अप्रैल, मई, जून 2020 (संयुक्तांक)

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	03
2.	पत्रकार बाबासाहेब डॉ. बी. आर. आम्बेडकर के ''मूकनायक'' समाचार पत्र के एक सौ वर्ष	शेखर	05
3.	''काली आँधी'' उपन्यास की प्रासंगिकता	शिव कैलाश यादव	07
4.	फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ का प्रगतिवाद	पिन्टू यदव	11
5.	रत्नकुमार सांभरिया के आत्मकथ्य 'शब्द बदलते युग' का सामाजिक अवलोकन	प्रदीप कुमार	14
6.	'आओ पेपे घर चलें उपन्यास में नारी विमर्श'	चौधरी बबीता	18
7.	राष्ट्र पुरुष बाबासोहब डॉ. बी.आर.अम्बेडकर और पत्रकारिता	आयु. सुरेश साबले	20
8.	प्रसाद के साहित्य में नारी विषयक दृष्टिकोण	डॉ. कुलदीप कौर	30
9.	डॉ. अम्बेडकर और भारतीय संविधान	डॉ. मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ	32
10.	बुद्धं सरणं गच्छामि	बुद्ध शरण हंस	36
11.	सन्त कबीर साहब की वाणी	आर.सी. विवेक	39
12.	आपकी पाती हमारी थाती	अमीत कुमार लाड़ी	41

UGC द्वारा मान्यता 47816 प्राप्त पत्रिका

खाते का नाम - आश्वस्त,खाते का नं.- **63040357829**
बैंक - भारतीय स्टेट बैंक, शाखा- फ्रीगंज, उज्जैन
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 15/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 150/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 1,500/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 10,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेंगा।

अपनी बात

इंसान बनो, कर लो भलाई का कोई काम इंसान बनो।
दुनिया से चले जाओगे, रह जाएगा बस नाम इंसान बनो।।

जब से कोरोना (कोविद–19) का कहर बरपा है, ओर इसने सम्पूर्ण विश्व को अपनी चपेट में लेकर महामारी का रूप अख्तियार कर लिया है तो सम्पूर्ण सृष्टि यही पुकार करती सुनाई दे रही है। यह महामारी चाहे प्राकृतिक हो या मानव निर्मित परन्तु यह मानवता के सरासर खिलाफ तो है लेकिन इसे अस्तित्व में लाने वाले भी तो हमीं हैं।

भारत में कोरोना की रोकथाम के लिये भारत सरकार को कड़े कदम उठाते हुए 22 मार्च 2020 का एक दिन का जनता कर्फ्यू और उसके बाद लॉकडाउन की घोषणा कर उसे लॉकडाउन–4 तक बढ़ाया गया। इस अवधि में महामारी से निपटने के लिये शासन को रेल सेवा, बस सेवा को निरस्त करना पड़ा और अन्य सावधानियों के साथ सोशल डिस्टेंस जो वास्तव में फिजिकल डिस्टेंस है, का प्रावधान भी किया गया। जिसका अनलॉक के बाद भी जन सामान्य को पालन करना उन्हीं के हित में है। इस अवधि में बहुजन समाज की तीन महान हस्तियों बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर, तथागत गौतम बुद्ध और संत कबीर साहब की जयंति भी शासन के दिशा–निर्देशानुसार सम्पूर्ण देश और विदेश में डिजीटल रूप से Webinar के माध्यम से मनाई गई। बहुजन समाज की इन तीनों महान हस्तियों ने सम्पूर्ण विश्व को मानवता का संदेश अपने लेख, सम्पादकीय, पुस्तकों, भाषणों, प्रवचन, उपदेश, व्याख्यान एवं वाणी, साखी आदि के माध्यम से दिया है। संक्षेप में पुनः एक बार उनका स्मरण करना समीचीन होगा।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में शास्त्र और शस्त्र के दबाव की राजनीति के कारण सामंती समाज का अभ्युदय हुआ जिसे आज की भाषा में अभिजात्य वर्ग के रूप में जाना जाता है। इस सामंती मानसिकता के अभिजात्य समाज का यह कटा हुआ दलित–शोषित वर्ग युगों तक विभिन्न निर्योग्यताओं के तले दबता–कुचलता रहा और शिक्षा तथा संस्कृति से पिछड़ता चला गया। डॉ. अम्बेडकर ने ऐसी असमानतावादी सामाजिक व्यवस्था को बदलने के लिये जीवन पर्यन्त संघर्ष किया। वे सभी सामाजिक बुराईयों की जड़ हिन्दुओं की वर्ण–व्यवस्था को मानते थे। उनका मानना था कि ''वर्ण व्यवस्था सभी असमानताओं की जड़ है। समानता का अर्थ है कि सभी को समान अवसर मिले और प्रतिभा को ही प्रोत्साहित किया जाय। समाज का गठन दो सिद्धांतों पर किया जाय – समानता और जाति विहिनता उनका लक्ष्य सदियों से पीड़ित, शोषित, उपेक्षित व सतायी मानवता को शोषण से मुक्ति दिलाना था। मानव मूल्य उनके लिये सबसे बढ़कर थे। डॉ. अम्बेडकर ब्राह्मणों के विरोधी नहीं थे बल्कि ब्राह्मणी व्यवस्था के विरोधी थे। वे कहते थे ''हरिजनों को खतरा ब्राह्मणों से नहीं बल्कि कृषि पर आधिपत्य जमाये हुए जातियों से है।'' वे आगे यह भी कहते है कि ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद दोनों गरीब–मजदूरों के दुश्मन है। दोनों में समानता के लिये कोई स्थान नहीं है।''

डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं कहा है कि ''मैंने अपनी विचारधारा के तीन मूलभूत तत्व – स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व को अपने धार्मिक गुरु तथागत गौतम बुद्ध से ग्रहण किया है न कि फ्रांस की राज्य क्रान्ति से। वे आगे यह भी कहते है कि केवल बन्धुत्व भावना ही स्वतंत्रता और समानता का सुरक्षा कवच है। इसी का दूसरा नाम मानवता है और मानवता ही धर्म है।'' महा कारुणिक तथागत गौतम बुद्ध ने धम्मचक्र प्रवर्तन सूत्र का उपदेश दिया। इस सूत्र के माध्यम से उन्होंने चारों आर्य सत्य तथा आर्य आष्टांगिक मार्ग की व्याख्या की। बौद्ध धम्म में सर्वत्र बुद्धिमता और समझदारी प्रतिष्ठित है। किसी परा–प्राकृतिक गुण के कारण जो सारी भौमिक सीमाओं को लांघकर गया हो, बुद्ध ने अपने आप को औरों से ऊपर नहीं माना है। उन्होंने बार–बार यही कहा है कि तुम्हें आत्म–निर्भर होना चाहिए–''अपने दीपक अपने आप बनो।'' अपनी शरण में आप जाओ। उन्होंने अपने अनुयायियों को हमेशा उनके अन्दर जो देवत्व विराजमान है, उनके अंदर जो शुभ शक्ति विद्यमान है उसी की याद दिलाई है। बौद्ध धर्म में असीम औदार्य है और सभी प्राणियों के लिये करुणा सन्निहित है। बौद्ध धम्म के बारे में ही यह कहा जा सकता है कि इसने जीववाद, हठधर्मिता

का पूर्ण परित्याग कर दिया है, काव्य–क्लेश वाद को एकदम छोड़ दिया है, सभी कर्मकाण्ड़ों से किनारा कर लिया है। यह दानशीलता, करुणा, आत्म–त्यांग और आत्म–बलिदान का ही साक्षी है। यही एक धम्म है जो इस बात की शिक्षा देता है कि आदमी के लिये यदि कहीं से कुछ आशा है तो मात्र आदमी से ही।

संत कबीर साहब के युग में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में अनेकानेक संघर्ष चल रहे थे। समस्त भारतीय समाज धर्म और कर्म के आधार पर अनेक वर्गों में विभाजित था। उन सभी वर्गों को शास्त्र और लोकाचार के अनेक भ्रमजाल सामाजिक और मानसिक यातनाओं से घेरे हुए थे। जन सामान्य पीड़ित और आतंकित होकर जीवन के प्रति निराशा और आशा के बीच झूल रहा था। कबीर साहब ने अपने युग की इस स्थिति को बहुत गहराई तक समझा तथा कविता, साखी एवं व्यंग्य के माध्यम से सभी बुराईयों पर इतनी सशक्त चोट की, कि जन सामान्य को सब प्रकार की यातनाओं से मुक्ति पान का एक विशाल द्वार मिल गया।

कबीर साहब का मुख्य स्वर विद्रोह का है, यद्यपि वे मूल्यहीन विद्रोही नहीं है। वे संत कवि है और संत कवि सदाचार पर अधिक जोर देते है। उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था पर तीव्र प्रहार करके मनुष्य की उच्चता और नीचता का मानदण्ड आचरण को माना, वर्ण को नहीं। कबीर साहब ने जो समाज देखा था, उसमें विभिन्न प्रकार की विषमताएं थी। वर्णाश्रम व्यवस्था का विकृतरूप सामने था। व्यक्ति की उच्चता और नीचता का मापदण्ड उसका जन्म कुल ही रह गया था। ब्राह्मण चाहे जितना दुराचारी हो ऊँच था, दलित चाहे जितना सदाचारी हो नीच समझा जाता था। कबीर साहब ने इस मापदण्ड को अमान्य किया। वे मानव को मानव समझने के पक्षधर थे। वे अत्याचार और पीड़ा के प्रत्येक क्षेत्र में अपना विरोधी स्वर मुखर करते है। भौतिक धरातल पर मानव एक सामाजिक प्राणी है, एक व्यक्ति का अस्तित्व समाज के अस्तित्व से अलग नहीं होता है। आध्यात्मिक धरातल भी ऐसा ही है। यों तो बाहर से सभी प्राणी अलग–अलग घरों (देहों) में अलग–अलग मालूम होते हैं पर उनकी अन्तरात्मा का स्वरूप एक ही जैसा होता है। अंतरात्मा ज्ञान स्वरूप है। इन महान हस्तियों के विचार–संदेश आज भी प्रासंगिक है, जिसे आत्मसात करके हम सामाजिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना कर सकते है।

कोरोना महामारी के इस दौर में साधन सम्पन्न लोगों ने साधन ही लोगों की घोर उपेक्षा की है। देश के शिखर पर पहुंचे उद्योगपति, पूंजीपति, मिल और फैक्ट्री मालिक इन मजदूरों के गाढ़े पसीने के कारण इस मुकाम पर पहुंचे है। विश्वव्यापी इस महामारी और लॉकडाउन के समय सरकार ने तो इन प्रवासी मजदूरों की चिंता नहीं की, लेकिन जिन साधन सम्पन्न लोगों के यहाँ ये प्रवासी मजदूर कार्यरत थे उन्हें तो इनके जीवन की रक्षा करना, उनकी नैतिक जवाबदारी थी। आपके कारोबार की वृद्धि और उन्नति में इनकी भूमिका 'रीढ़ की हड्डी' सदृश्य है। घोर आश्चर्य होता है कि इन साधन सम्पन्न लोगों ने यह नहीं सोचा कि इस महामारी से निजात पाने और लॉकडाउन खुलने पर क्या ये प्रवासी मजदूर फिर से उनके कल कारखानों, फैक्ट्रियों में, उद्योग में मजदूरी करने आयेंगे? क्योंकि उनका विश्वास आप पर से उठ चुका है। वे अपने गांवों–कस्बों में अपने घर–परिवार के साथ थोड़े में ही गुजारा करना उचित समझेंगे ।

रेल बन्द, बस बन्द, लॉकडाउन के कड़े नियमों ने जाने कितने प्रवासी मजदूरों, गर्भवती स्त्रियों, बच्चों, बुजुर्गों की जान ले ली। भीषण गर्मी में चिलचिलाती धूप में घर पहुंचने की लगन बिना–खानाा पानी के यात्रा कितनी दुरुह होती है, कल्पना मात्र से सिंहरन पैदा हो जाती है ।

भारत लोक कल्याणकारी राज्य भी है। अतः भारत सरकार को चाहिए था कि देशव्यापी लॉकडाउन के पूर्व उद्योगपति, पंजीपति, मिल एवं फैक्ट्री मालिकों को उनके यहां कार्यरत मजदूरों के लिये आवास की व्यवस्था या उन्हें अपने घर भेजने की व्यवस्था के प्रावधान किये जाने चाहिए थे। या शासन उन्हें अपने गंतव्य तक पहुंचाने के लिये स्पेशल रेल एवं बस सेवा नियत समय के लिये जारी करती तो इन बेबस मजदूरों या उनके आश्रितों की बेवजह जान नहीं जाती। इस महामारी से निपटने के लिये डॉक्टर्स, नर्सिंग स्टाफ के साथ–साथ समाज सेवियों ने जो अहम भूमिका निभायी इसके लिये वे सर्वथा बधाई के पात्र है। ऐसे कोरोना वारियर्स, कर्मयोद्धा, जीवन–मित्र का समाज सदैव आभारी रहेगा।

डॉ. तारा परमार

पत्रकार बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकर के 'मूकनायक' समाचार पत्र के एक सौ वर्ष

शेखर

मुम्बई के सिडेनहेम कॉलेज में बतौर अर्थशास्त्र के प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए विख्यात अर्थशास्त्री बाबा साहेब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के सार्वजनिक जीवन की शुरूआत पर यदि गौर किया जाए तो पाठकों और अध्ययनकर्ताओं को ज्ञात होता है कि भारत की ब्रिटिश हुकूमत ने अनेक जाति, उपजाति, कबिलों, धर्मों में बिखरे भारत के लोगों के लिए लोक प्रतिनिधि का चुनाव करने हेतु तथा उन्हें मताधिकार का अधिकार देने हेतु साउथबेरों कमिशन की नियुक्ति की थी। बहिष्कृत अथवा अस्पृश्य जाति के लोक प्रतिनिधि के अभाव में उनकी ओर से सर नारायण चन्दावरकर जो कि प्रार्थना समाज से सम्बन्धित थे तथा कर्मवीर विट्ठल रामजी शिन्दे ने साउथबेरों कमिशन के समक्ष निवेदन अथवा ज्ञापन दिया था–इन दोनों ही नेताओं की राय यह थी कि अस्पृश्य समाज में शिक्षित वर्ग ना होने की वजह से उन्हें अलग से अपना प्रतिनिधि चुनने के प्रावधान की तो कतई आवश्यकता नहीं है। उनकी ओर से समस्या के समाधान हेतु किसी अन्य को प्रतिनिधित्व देने अथवा सौंपना योग्य होगा। यह दलितों के अधिकार का सरासर हनन करने की सलाह और सिफारिश ब्रिटिश हुकूमत को किया जाना अन्याय तो था ही, अपितु इस तरह का विचार एवम् सलाह दिया जाना शोषित, पीड़ित, उपेक्षित और अधिकार वंचित दलित समाज के वजूद याने अस्तित्व की ही अवहेलना करना अथवा उपेक्षा करना या उसे नकारने की कवायद कही जा सकती है। दलितों के लोक प्रतिनिधि एवम् मतदाता की पात्रता या योग्यता के मापदण्ड हानिकारक एवं मतदाता बनने से वंचित करने वाले होने की वजह से दलितों के प्रतिनिधि चुने जाना असंभव था। इस यथार्थ की जानकारी मिलने पर बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी ने सिडनहेम कॉलेज की नौकरी की परवाह न करते हुए अंग्रेज सरकार को पत्राचार द्वारा निवेदन देकर वास्तविकता से परिचय करवाया और इस कार्य में सफलता हासिल की।

साउथबेरो कमिशन की ओर अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए बाकायदा बुलावा आने पर बाबासाहेब डॉ. बी.आर. अम्बेडकरजी ने साउथबेरो कमिशन को दिए अपने ज्ञापन में स्पष्टता से कहा था कि अस्पृश्य समाज हिन्दुओं से बिल्कुल अलग है। "There is no link between the Hindu and untouchable" इसीलिए उन्हें अलग से मतदाता बनने का तथा अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिलना उनका हक बनता है। अपनी बात और अधिकारों के प्रति अस्पृश्य समाज में चेतना का संचार करने हेतु और उन्हें अधिकार प्राप्ति के लिए जगाने हेतु और दूसरे अन्य लोगों को अपनी समस्या का इजहार करने हेतु, अपना न्याय पक्ष रखने हेतु, वैचारिक भिंडत करने हेतु और बहस में अपने पक्ष में अपनी दलील या तर्क अथवा ठोस पक्ष रखने हेतु कानून के सजग जानकार एवम् अर्थशास्त्री बाबासाहेब डॉ.बी.आर. आम्बेडकरजी को पत्रकारिता के चुनौतीपूर्ण क्षेत्र में सोच समझकर और अंतिम निर्णय लेकर कूदना पड़ा था। डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी भली–भांति जानते थे कि कुछ अपवादों को यदि छोड़ दिया जाए तो अस्पृश्य समझे जाने वाले दलित समाज में शिक्षा का पूरी तरह अभाव है और समाचार–पत्र पढ़ना, उसका अध्ययन करना तथा विश्लेषक दृष्टि से खबरों तथा अखबार में व्यक्त विचारों पर तर्क युक्त मनन और बहस करने की जागरुकता पूरी तरह अभी विकसित नहीं हो पायी है। 1908 में पुणे से शिवबा जानबा काम्बले जी ने ''सोमवंशी मित्र'' नामक जो अखबार निकाला था, वह भी केवल एक जाति विशेष की भावनाओं की

अभिव्यक्ति में पहचाना जा चुका था...यह अखबार विभिन्न जातियों में बिखरे समूचे अस्पृश्य समाज के लोगों में नाम की वजह से स्वीकृत नहीं हो पाया था। सारी दिक्कतों और बाधाओं को पार कर समूचे दलित समाज की जागृति हेतु समाचार पत्र की आवश्यकता डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी अपने समय में पुख्ता तौर पर महसूस कर रहे थे। समस्याओं एवम् बाधाओं को दूर कर अस्पृश्य समाज की जागृति और विरोधियों को सटिक जवाब देकर दलितों की सर्वांगीण उन्नति एवम् विकास हेतु 31 जनवरी 1920 को 'मूकनायक' का पहला अंक प्रकाशित हुआ था। इस कार्य में सम्पादक की जिम्मेदारी का वहन पूर्व महाराष्ट्र अर्थात् बरार या विदर्भ के रूप में परिचित पाण्डुरंग भटकर को सौंपी गई। भटकर के व्यवस्थापन में 'मूकनायक' समाचार–पत्र के कुल बारह अंक प्रकाशित हुए। 'मूकनायक' पत्र के तेरह से लेकर उन्नीसवें अंक के सम्पादक ज्ञानदेव ध्रुवनाथ घोलप थे। अंतिम उन्नीसवां अंक 23 अक्टूबर 1920 को प्रकाशित होकर आखिरकार 'मूकनायक' समाचार–पत्र को बन्द करना पड़ा, किन्तु इस अखबार से दलितों की प्रखर पत्रकारिता युग की शुरूआत हुई है।

'मूकनायक' अखबार के अध्ययन से पता चलता है कि इसमें 21 और 22 मार्च 1920 को तत्कालीन कोल्हापुर नरेश छत्रपति शाहू महाराज के रियासत में तथा उन्हीं की पहल से आयोजित 'दक्षिण महाराष्ट्र बहिष्कृत वर्ग परिषद्' की ओर से सम्पन्न हुए कॉन्फरेंस की अध्यक्षता डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी ने की थी जिसके उद्घाटक एवम् प्रमुख वक्ता शाहू महाराज थे। अस्पृश्य या बहिष्कृत समाज के पहले सम्मेलन की समूची जानकारी 'मूकनायक' में प्रकाशित है, इसी तरह 'मध्यप्रांत एवं बरार' (Central Provins and Barar) की राजधानी रही नागपुर में 'बहिष्कृत समाज परिषद्' की ओर से तीन दिवसीय भव्य सम्मेलन का आयोजन किया गया था, जिसके अध्यक्ष सर वीर, कोल्हापुर रियासत के नरेश शाहू महाराज थे। यह सम्मेलन 30, 31 मई तथा 01 जून 1920 को आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन की समूची कार्यवाही की जानकारी 'मूकनायक' में दर्ज है।

महाराष्ट्र सरकार ने बाबासाहेब डॉ. बी. आर. आम्बेडकर द्वारा रचित किताबों के अलावा **'मूकनायक'** और **'बहिष्कृत भारत'** समाचार–पत्र को पुस्तक रूप में पुनर मुद्रित कर उसका प्रकाशन किया हे। इस कार्य में स्मृतिशेष वसंत मून जी का योगदान उल्लेखनीय है। मून साहब के प्रयासों से ही 'मूकनायक' अखबार के कुछ अंकों को पाठकों की जानकारी हासिल कर उनसे प्राप्त कर उसे पुनर मुद्रित कर प्रकाशित करना संभव हो पाया है। 'मूकनायक' अखबार की जानकारी प्रबुद्ध पाठकों को प्राप्त हो, इस हेतु बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी ने विज्ञापन प्रकाशित करने हेतु तत्कालीन कॉंग्रेसी नेता एवम् अखबार के सम्पादक बाल गंगाधर तिलक को अनुरोध पत्र भेजा था। किन्तु विज्ञापन की फीस देने को राजी होने पर भी तिलक ने 'मूकनायक' अखबार का विज्ञापन प्रकाशित करने से मना कर दिया था।

'मूकनायक' अखबार जनवरी 1920 से लेकर अक्टूबर 1920 तक केवल दस माह ही प्रकाशित हो पाया था। किन्तु अपने अल्पआयु में भी 'मूकनायक' ने इतिहास रचा है और स्थापित मीडिया अर्थात् प्रचार–प्रसार माध्यमों के सभी संसाधनों के होते हुए भी आर्थिक अभावों में गुजर बसर करके भी पत्रकारिता का चुनौती भरा कार्य अपने बलबुते यथासंभव पूरा कर दिखाया है।

'मूकनायक' समाचार–पत्र के एक सौ वर्ष पूरा होने पर सामान्य पाठक एवं अध्ययनकर्ता के रूप में हम जब बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी के आन्दोलन का अवलोकन करते है तो हमें ज्ञात होता है कि बहिष्कृत वर्ग की जाग्रति एवं उनकी शोषण, दमन की पीड़ा और उनके जीवन की सभी समस्याओं को विश्व के समक्ष रखने हेतु पत्रकारिता को पहला एवं प्रमुख या अहम स्थान दिया है तथा पत्रकार एवं वक्ता

के रूप में समाज को जाग्रति करने के साथ–साथ दूसरे पड़ाव में डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी ने पानी पर सभी के बराबरी के अधिकार की बात को असलियत में क्रियान्वयन हेतु अब के रायगढ़ जिले के महाड शहर में स्थित चवदार तालाब आन्दोलन का सूत्रपात किया था और फिर इसके पश्चात् तीसरे पड़ाव में मार्च 1930 से लेकर अक्टूबर 1935 तक नासिक में मन्दिर प्रवेश आन्दोलन चलाया था। इसी से पत्रकारिता का महत्व और उसकी उपयोगिता को सहजता से समझा जा सकता है। 'मूकनायक' अखबार से दलितों के बौधिक विकास में अनूठा एवम् युग प्रवर्तक योगदान मिला है जिसे भुलाया नहीं जा सकता।

'मूकनायक' अखबार के एक सौ वर्ष पूरा होने के अवसर का लाभ उठाकर हम अपने अध्ययन से आसानी से जान सकते है कि बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी ने समाचार पत्र के महत्व को बड़े ही स्पष्ट रूप से रेखांकित करना चाहा है। इसके साथ ही 'मूकनायक' के प्रकाशन का कठिनाई भरा कार्य संभव कर इस अखबार के माध्यम से दलितों का जीवनमान, उनकी सोच, उनके रहन–सहन, उनकी आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक प्रगति के भूगोल को विश्वव्यापी बनाने का चुनौती भरा कार्य स्वीकार कर दलितों के स्वतंत्रता एवं स्वायतत्ता के आंदोलन को समुचित दिशा देकर उसे अपने बलबूते खुद के पैरों पर खड़ा करने की दृष्टि प्रदान की है। 'मूकनायक' समाचार पत्र प्रकाशित करने के डॉ. आम्बेडकर के संकल्प, मंशा एवं उद्देश्य से ही भली–भांति स्पष्ट हो जाता है कि दलित चेतना का लक्ष्य हासिल करने हेतु प्रतिबद्ध पत्रकारिता के नाम पर लगातार चलकर ही दलितों की प्रगति की कुछ आशा एवं उम्मीद की जा सकती है।

ए–106, हिल अपार्टमेंट, रोहिणी,
सेक्टर–13, दिल्ली–110085
मोबा. 9873843656

''काली आँधी'' उपन्यास की प्रासंगिकता

शिव कैलाश यादव

सरकारें व उसका शासन–प्रशासन एक अस्थायी तंत्र है। जो पांच–दस साल या कुछ निश्चित अंतराल के बाद बदलती रहती है। राजनीतिक शक्ति तो आती–जाती रहती है, यह कोई स्थायी विरासत नहीं है। पर जनता व लोकतंत्र जो स्वतंत्र इकाइयां हैं, जो सरकार का निर्माण करती हैं वह स्थाई है, नियमित है। इस बात को अक्सर भूला दिया जाता है, कि लोकतंत्र स्थायी है, सरकारें अस्थायी। और ये अस्थायी शक्तियां स्थायी शक्तियों को कैसे अपने कुचक्रों, दमन, शोषण की नीतियों में उलझा लेती हैं यह अकल्पनीय है। और जनता यह सोच कर वोट देती है कि शायद,(शायद इसलिए क्यों कि जनता किसी भी सरकार पर पूरा भरोसा तो करती ही नहीं और न करने लायक होती हैं) सरकार के द्वारा इस बार हमारी स्थिति–परिस्थिति में थोड़ा बहुत परिवर्तन हो जाए पर भाग्य रेखा तो उनकी बदलती है जो चुने जाते हैं। चुनने वाला तो अपने आप को ठगा हुआ महसूस करते हुए स्वयं को कोसने लगता है। क्योंकि उसकी स्थिति बदलने की बजाय और अधिक पतन की ओर अग्रसर हो चलती है क्योंकि चुनाव के बाद तो सारी बातें भूलाकर स्वार्थ व धूर्तता पूर्ण राजनीतिक दाव–पेच शुरू हो जाता हैं। जो हर समय से होता आया है। हाँ इसकी मात्रा व वैचारिकी में गुणात्मक अंतर हो सकता है। पर नियंत्रण इस पर कभी न रहा। इन्हीं राजनीतिक, विषमताओं, विसंगतियों, स्वार्थों को केंद्र में रखकर कमलेश्वर ने काली आंधी नामक उपन्यास का सृजन किया जो स्वरूप में तो एक लघु उपन्यास है। पर उपन्यास की मार्मिकता, संवेदना, शिल्प, कथ्य और जो इसकी जीवंतता, शाश्वतता व

प्रासंगिकता है वह दीर्घ जीवी है। और राजनीति के अतीत व वर्तमान परिदृश्य को आईना दिखाते हुए एक बिम्ब भी हैं।

उपन्यास में राजनीति की जो व्याख्या की गई है वह राजनीति के काले–उजले कारनामों का एक प्रामाणिक दस्तावेज है। और जब राजनीतिक हथकंडे, तिकड़में व उसकी बारिकियों पर लेखक समाज व राजनीति को परखता हैं तो उसके सारे मूल्य टूटने लगते हैं। और इस टूटन व निर्मिति में आम जन कहाँ से कहाँ चला जाता हैं ।यह लेखक की मुख्य चिंता है। जो इसको एक सफल उपन्यास भी बनाती है। क्योंकि रचनाएं तो बहुत होती हैं पर जो समाज की जीवंत विसंगतियों, समस्याओं मनुष्य की विषमताओं उसकी संवेदना पर जितनी अधिक पकड़ बनाती हैं वे उतनी ही अधिक प्रभावी व जीवंत बन जाती हैं। काली आंधी किसी निश्चित समय की विसंगतियों की आंधी नहीं है। वह हर पांच वर्ष में आने वाली एक आंधी है। जो मालती जैसे को तो निर्मित कर जाती है पर जग्गी बाबू व लिली जैसे को उजाड़ भी जाती है।और आपसी भाईचारे को धर्म, जाति, वर्ग में बाँटकर आपस में लड़ने को छोड़ भी जाती है। पर जो जग्गी बाबू जैसे संवेदनशील लोग हैं वे इसको बखूबी समझते हैं। तभी तो जग्गी बाबू टिप्पणी करते हुए कहते हैं :– तुम्हारी राजनीति बड़ी घटिया चीज है... तुम लोगों ने इसे निहायत बेहूदा बना दिया है। तुम लोग सिर्फ चीजों का बखूबी इस्तेमाल करना जानते हो। बाढ़ आई तो उसे इस्तेमाल करो... सूखा पड़ा तो उसे इस्तेमाल करो... कहीं कोई मर गया तो उसकी मौत का इस्तेमाल करो... तुम लोगों ने आदमियों के आंसू और जज्बातों तक को नहीं छोड़ा... उसकी आशाओं और सपनों तक को नहीं बख्शा... इससे ज्यादा घटिया बात और क्या हो सकती है... तुमने... तुमने उसके सपनों को नारे बना– कर निचोड़ लिया।[1]

यह बात केवल जग्गी बापू के समय में ही सच नहीं थी। बल्कि यह राजनीति का एक शाश्वत सत्य है। जो आज हर स्तर की राजनीति में दिखाई पड़ती है वह चाहे क्षेत्रीय हो, राष्ट्रीय हो, या फिर वैश्विक हो। हर जगह यह अपने उलझे रुपों में बिखरी पड़ी हैं।

उपन्यास में द्वंद व त्रासदी का एक पूरा प्लाट भी फैला हुआ है। जिसमें राजनीतिक भ्रष्टाचार, अवसरवादिता और असफल दांपत्य जीवन का विखंडित व बिखरा हुआ स्वरूप भी देखने को मिलता है। राजनीतिक सफलता की दौड़ में पारिवारिक संबंधों को छोड़कर महत्वाकांक्षा से ताल्लुक रखने वाली मालती देवी एक तरफ है तो सफल पति के बावजूद भी घुटन भरी जिंदगी जीने वाले स्वाभिमानी पति जग्गी बाबू दूसरी तरफ और इन दोनों के उलझे हुए संबंधों के बीच फंसी बेटी लिली है। और दूसरी तरफ देखे तो बेईमान राजनीतिक नेताओं के स्वार्थ तथा सांप्रदायिकता युक्त चुनाव के चक्कर में फंसी हुई निरीह जनता है। उपन्यास में पारिवारिक, सामाजिक व राजनीतिक भ्रष्टाचार की सीमाएं अपने चरम पर हैं।

चुनावी जुमलों तथा उसके दांव–पेच से पूरा उपन्यास भरा पड़ा है। हर बार एक नया जुमला गढ़ लिया जाता है। कहीं जाति, धर्म, संप्रदाय का इस्तेमाल किया जाता है तो कहीं भेदभाव पैदा कर चुनाव जीतने के हथकंडे अपनाए जाते हैं। चुनावी माहौल में जनता की आम समस्याओं से उनके ध्यान को भंग करने के लिए कैसा शोर–शराबा मचाते हैं और उसके बाद आमजन अपनी समस्याएं कैसे भूल कर उनके लोक लुभावने वादों में फंस जाते है। मालती इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। राजनीति का यह जो असली चरित्र है उपन्यास में बेनकाब होता है। और पूरी तरह से उसका काला सच सामने आता है।

मालती और जग्गी बाबू इस उपन्यास के मुख्यतः दो चरित्र हैं। और आपस में पति पत्नी भी हैं।

जिसमें मालती राजनीति में सक्रिय होकर निरंतर नई ऊंचाइयों को प्राप्त हो रही है,और जग्गी बाबू इन्हीं ऊंचाइयों और सामान्य जीवन के उहापोह में फंसे हुए व्यक्ति हैं। जो न तो मालती को प्राप्त कर पा रहे हैं, और ना ही उससे पूरी तरह मुक्त हो पा रहे हैं। मालती भी राजनीतिक ऊंचाइयों को प्राप्त करने में अपना बहुत कुछ खोती भी है। जिसमे उसके हाथ से जग्गी बाबू और लिली भी फिसल चुके होते हैं। इन अर्थों में यह उपन्यास द्वि आयामी या द्विपक्षीय भी है। जिसमें एक पक्ष राजनीति का है, तो एक पक्ष परिवार का। जिसमें मालती की एक व्यक्तिगत जिंदगी टूट रही है,तो सामाजिक व राजनीतिक जीवन नित नई ऊंचाइयों, नए आयामों को पाने वाला सफल नेत्री का व्यक्तित्व है। पर जग्गी बाबू निरंतर टूटी हुई पारिवारिक कड़ियों से छूटे हुए व्यक्ति के रूप में आते हैं । उपन्यास का एक दृश्य है, जिसमें उनका सहायक कहता हैं :– मैं किसकी तारीफ करूं ? किसे दोष दूँ ? किसे गलत या सही कहूं ? एक तरफ जग्गी बाबू हैं और दूसरी तरफ मालती है। और लिली ? वह बेचारी तो अबोध है। जग्गी बाबू की तकलीफ गहरी है तो मालती जी की महत्वाकांक्षा भी उतनी ही गहरी है।[2] बस इतने ही मे देखे तो उपन्यास का जो पारिवारिक परिदृश्य हैं वह स्पष्ट है कि उसकी स्थिति क्या हैं।

उपन्यास का राजनीतिक परिदृश्य मुख्यतः चुनाव जीतने पर केन्द्रित हैं। चुनाव के भी अलग–अलग चरण होते हैं। कुछ महीने पहले तो केवल स्थानीय नेताओं पर ही सारा काम होता है। पर जैसे–जैसे चुनाव पास आता है। वैसे–वैसे उस क्षेत्र में बड़े नेताओं की खेप आनी शुरू हो जाती है। चुनावी सरगर्मियाँ तेज हो जाती हैं। दांव–पेच नारों, मीटिंग्स,रोड शो का दौर शुरू हो जाता है। वक्त जरूरत और जीत के सूत्र अपनाये जाने लगते है। मालती जी स्वयं इस सूत्र की बड़ी कायल हैं। मालती जी की भी यही रणनीति रही है जो बेहद सफल साबित होती रही! वक्त! जरूरत! और जीत! इन तीनों बातों पर ही वे टिकी हुई थी।[3]

मालती जी में वर्तमानकालिन सच्चे नेता के सारे गुण हैं।जो जितना अधिक इस्तेमाल करें, फसाद करें, वह उतना ही अधिक सफल हुआ न यही तो आजकल के सफल नेताओं की पहचान हैं। इसके प्रमाण है जग्गी बाबू। वह अपने पति जग्गी बाबू तक का इस्तेमाल बखूबी करती है। आज भी तो हैं ये सारी चीजें। चुनाव मैदान में यह जो ढोग ढकोसला या स्वार्थ की राजनीति है इसने इंसान के मानवीय मूल्यों को तोड़ कर रख दिया है। नेताओं पर से जनता के विश्वास को खत्म कर रखा है। इस बात का स्पष्टीकरण मालती के कथन से स्पष्ट हो जाता हैः–हर काम वक्त पर करो–जब जरूरत पड़े तब आदमी या परिस्थितियों का इस्तेमाल करो और जीत लो।[4] यह राजनीति का नया अध्याय गढ़ा जा रहा है आदमी या परिस्थितियों का इस्तेमाल करो और जीत लो। आजकल तो परिस्थितियों को निर्मित भी किया जा रहा है। यह स्वार्थपरता व धर्मान्धता समाज, इंसान मनुष्यता को कहां ले जाएगी शायद इसका हमें अंदाजा भी नहीं। पर यह जहां भी ले जाएगी वहाँ निश्चय ही किसी काली आंधी या गहन अन्धकारों की गुफा अवश्य होगी जहां मानवता चिख–चिल्ला रही होगी।

राजनीतिक विकृतियों के जितने प्रकार इधर देखने को मिल रहे है, उतनी विकृतियां शायद पहले कभी नहीं थी। आजकल तो एक नॉरेटिव गढ़ा जाता है फिर चुनाव लड़ा जाता है। या चुनाव के लिए नारेटिव पहले से ही तैयार कर रखा जाता है। मालती जी भी क्षेत्र का मुआयना करने के बाद पता करती हैं कि क्षेत्र में बनियों, मुसलमानों या अन्य की जनसंख्या क्या है। और कहती हैः–इस चुनाव क्षेत्र में बनियों की अक्सरियत है। खासतौर से शहरी इलाकों में। फिर

और इन्हीं आंकड़ों के मुताबिक वादें और चुनावी घोषणाएं की जाती हैं। किस वर्ग की प्रभुता अधिक है उसको तवज्जो भी अधिक मिलती है। यह जो अनदेखी की राजनीति है वह किसका नुकसान कर रही है। यह तक समझ न रखने वाले सांप्रदायिक विकृतियों वाले हमारे नेता होते हैं। यह एक बड़ी त्रासदी है। राजनीतिक अवसरवादी या दला–दली के दलदल में सामान्य लोगों को कैसे इस्तेमाल किया जाता है इस बात का जिक्र मालती द्वारा गठित महिला मंडल की खबरों से पता चलता है। पूरा उपन्यास नारो, रणनीतियों और राजनीतिक शोर–शराबे के बीच पारिवारिक तनाव से भरा पड़ा है मालती जग्गी बाबू के बीच एक मासूम लिली का भविष्य अंधकार में है। तो राजनीतिक दलों के बीच जनता का भविष्य भी अंधेरे में कहीं गुम है। पर इनकी बातें व नारो मे जो आकर्षण होता हैं वह कुछ इस प्रकार से होता हैं कि लोग उलझकर रह जाते हैं। आकर्षण का नमूना देखिए:–तो भाइयों और बहनों! मेरे कहने का मतलब सिर्फ यही है कि आप बड़े और खुले दिमाग से सोचे, दोस्त और दुश्मन में फर्क करो। अगर हम हिंदू और मुसलमान की तरह सोचते रहे तो यह मुल्क गारत में जाएगा।[5]

इसी के बीच यदि हम पारिवारिक परिदृश्य को देखते है तो जग्गी बाबू की बातों से मालती और उनके बीच की दरारों को स्पष्ट देख सकते हैं :– शायद मैं बेहतर जानता हूं कि जरूरत के बगैर आपके लिए कोई जरूरी नहीं होता, और वक्त की अहमियत के बगैर बेवक्त आप किसी को बुलाती नहीं।[6] राजनीति कहीं न कहीं सामान्य लोगों में भी एक प्रकार का अस्थाई लोभ पैदा करती है। जो हमारी दरिद्रता का एक पैमाना भी है व बड़ी विसंगति भी जो यह इंगित करती है कि अभी भी हम स्वतंत्र होकर वोट नहीं कर पाते हमारे वोटो का मोल कर लिया जाता है। एक सामान्य कार्यकर्ता कहता है :खूब रही मैंने ईमानदारी से सिर्फ आपकी तरफ का काम करा इसका नतीजा यह है कि मेरे पैसे भी गोल जो दोनों तरफ का काम करता है वही मजे में है आप से भी पैसा पाते हैं उनसे भी।[7] यह आज का यथार्थ सत्य है

किसी भी रचना की प्रासंगिकता उसके सामाजिक उपादेयता पर अधिक निर्भर करती है। जो जितनी अधिक सामाजिक होगी वह उतनी ही अधिक प्रासंगिक होगी। जो जितनी अधिक समसामयिक यथार्थ के साथ–साथ भविष्य को जितनी दूर तक देखती वह उतनी ही सशक्त व सजीव रचना होती है। काली आंधी भी कुछ ऐसी ही सशक्त और प्रासंगिक है जो अपने समय के साथ अपने समय के आगे भी देखती हैं। जो राजनीतिक छलावे 1974 के आसपास प्रस्फुटित हो रहे थे। वे आज एक विशाल वृक्ष का रूप धारण किये है। यह उपन्यास स्वरूप में भले ही एक लघु उपन्यास क्यों न हो पर इसकी प्रासंगिकता आज भी विस्तृत है। और यहीं किसी भी रचना की जिवंतता का आधार है। जो उसके रचनाधर्मिता को भी बनाए रखती है।

शिव कैलाश यादव
सम्प्रति : शोधार्थी महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा (गुजरात)
मोबा. 9695625328

पता : पुराना विक्रम बाग, पवनवीर अपार्टमेंट के सामने प्रतापगंज, पोस्ट मास्टर जनरल ऑफिस, प्रतापगंज बड़ोदरा–390002 (गुजरात)

संदर्भ सूची :
1. काली आँधी, पृ. 4
2. काली आँधी, पृ. 12
3. काली आँधी, पृ. 15
4. काली आँधी, पृ. 21
5. काली आँधी, पृ. 38
6. काली आँधी, पृ. 49
7. काली आँधी, पृ. 53

फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ का प्रगतिवाद

✍ पिन्टू यादव

फैज अहमद फैज के प्रगतिवाद पर बात शुरू करने से पहले हमें इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि साहित्य और राजनीति का आपस में क्या संबंध है ? इसकी आवश्यकता इसलिए है कि हमारे युग में इस बुनियाद पर ऐसी बहुत सी भ्रांतियां प्रचलित हो गई हैं जो हमारे विचारों को गलत दिशा दे रही हैं। यदि हमारे मस्तिष्क में ये बात साफ रहे तो इससे न केवल इन भ्रांतियों से दूर रहा जा सकता है बल्कि हम फैज और उन जैसे दूसरे शायरों और साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व को अच्छे ढंग से समझ सकेंगे।

साहित्य का काम व्यक्ति की मानसिक संतुष्टि के साथ–साथ उसके विचारों को उचित दिशा देना भी है। अर्थात साहित्य व्यक्तिगत रूप से मनुष्य की सोच और समझ की आंतरिक व्यवस्था को प्रभावित करता है। इसी व्यक्ति से समाज की रचना होती है। यदि मनुष्य की अनुभूतियां और विचार भली–भांति संस्कारित नहीं हो पाते या उसे उपयुक्त वैचारिक प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ तो समाज का जो स्वरूप सामने आता है वह संतोषजनक नहीं होता। ऐसे समाज में रहते हुए प्रत्येक जागरूक व्यक्ति हर समय इसमें सुधार की आवश्यकता का अनुभव करता रहता है। परन्तु साधारणतः लोग ऐसे किसी सुधार के लिए स्वयं आगे नहीं आते। उनके विचार से ये काम उनका नहीं, किसी और के करने का होता है । यदि हम देखें तो बिगड़े समाज के लगभग हर वर्ग में यही विचार घर कर जाता है और सुधार का काम टलता रहता है। फिर एक समय ऐसा आता है जब कोई साहसी व्यक्ति उठ खड़ा होता है और आगे बढ़ कर समाज की इस समस्या की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करता है। चूंकि हर व्यक्ति किसी न किसी सतह पर समाज में सुधार चाहता है, इसलिए जब कोई ऐसा व्यक्ति सामने आ जाता है तो लोगों की एक बड़ी संख्या उसके साथ होने लगती है और धीरे–धीरे व्यक्ति एक समूह का रूप लेकर एक प्रभावकारी मोर्चा तैयार करने में सफल हो जाता है। इसका परिणाम ये होता है कि समाज–सुधार के द्वार खुलने लगते हैं। यह क्रांतिकारी काम दूसरों की अपेक्षा साहित्यकार अधिक सलीके से करता है। साहित्य की कोमल और सौंदर्ययुक्त अभिव्यक्ति किसी व्यक्ति विशेष को कटघरे में खड़ा किए बिना ही अपना काम करती है। इससे किसी व्यक्ति का सम्मान खतरे में नहीं पड़ता, इसलिए इसे आसानी से लोगों का समर्थन प्राप्त होता रहता है। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि ऐसे लोग भी इस समुदाय में सम्मिलित हो जाते है जो स्वयं भी उन बराइयों से ग्रसित होते हैं जिनके विरुद्ध वे खड़े हैं।

राजनीति का संबंध समाज के उपर्युक्त प्रबंधन से है। इसके लिए जिन संसाधनों की आवश्यकता होती है समाज उस व्यक्ति को प्रदान करता है जो इस सेवा का भार उठाता है। इनमें एक साधन शक्ति भी है। जो लाभदायक भी है और खतरनाक सीमा तक हानिकारक भी। यदि राजसत्ता सही हाथों में है और वह इस शक्ति का प्रयोग समाज की भलाई के लिए करता है तो समाज में सकारात्मक परिवर्तन आते हैं। परन्तु इसके विपरीत शक्ति का अनुचित प्रयोग होने पर समाज में न केवल भांति–भांति की बुराइयां पैदा होने लगती हैं बल्कि व्यक्ति में एक प्रकार की अकर्मण्यता, एक प्रकार का नाकारापन आ जाता है, जिसे ठीक करने में कभी–कभी शताब्दियां भी कम पड़ने लगती हैं।

फैज अहमद फैज ने अपने सिद्धांतों के लिए सक्रिय व संघर्षशील जीवन की शरुआत तो फाँसीवाद के खिलाफ दूसरे युद्ध में हिस्सा लेकर कर दी थी। आजादी के बाद वो पाकिस्तान में चले गए, जहां लोकतंत्र की स्थापना नहीं हुई। आजादी के लिए

उनका संघर्ष समाप्त नहीं हुआ था। जिन्दगी भर वे संघर्ष करते रहे और तानाशाही शासन सत्ताओं का दमन झेलते रहे। 1951 में उन्हें गिरफ्तार किया गया और उन्हें तख्ता पलट के जुर्म में जेल में डाल दिया गया। जेल जीवन उनकी रचनात्मकता के लिए बहुत अहम साबित हुआ।

जिस बात का फसाने में कोई जिक्र नहीं था
वही बात जनको सबसे नागवार गुजरी है,

फैज ने जब लिखना शुरू किया तो साहित्यिक जगत में कला के लिए अथवा जीवन के लिए कला के बीच तीखी बहस थी। प्रगतिशील आन्दोलन का मुहावरा अनुपम था। उन्होंने रचनाओं से आन्दोलन का काम लिया है। रचनाओं के माध्यम से मेहनतकश जनता के संघर्षों को व्यक्त करते थे। रचनाएं मेहनतकश वर्ग को समर्पित हैं। उनकी कविताओं के सरोकारों को इन्तिसाब नामक कविता से समझा जा सकता है। जिन्दगी से गहरा जुड़ाव उनकी कविता को जीवन प्रदान करता है। वे इंकलाब, संघर्ष, बदलाव की बात बड़े जोरदार ढंग से कहते थे पर प्रचारात्मक ढंग से बिल्कुल नहीं। शायरी उनके लिए सिर्फ वक्त काटने का जरिया ही नहीं थी, फैज ने प्रगतिशील मूल्यों और जीवन की अभिव्यक्ति के लिए कविता को चुना। फैज का रचनाकार अपने जीवन अनुभवों की पूंजी से रचना करता है, इसीलिए वह लाऊड होकर भी विश्वसनीय होती है। उन्होंने अपने युग के अन्तर्विरोधों, सत्ता की क्रूरताओं–अत्याचारों और मेहनतकश के संघर्षों–आन्दोलनों को अभिव्यक्त करने का संकल्प लिया और उस दायित्व को बखूबी निभाया। फैज शायरी में अपने निजी दुख–दर्दो–पीड़ाओं का रोना नहीं रोते, बल्कि अपनी तकलीफों और जमाने की तकलीफों को एकमएक कर देते हैं। अपने अनुभवों का विस्तार करके उनको आमजन की तकलीफों से गूंथ देने से फैज की कविताएं सामूहिक गान और आह्वान गीत की शक्ल अख्तियार करती जाती हैं और पाठक पर गहरा असर करती हैं। पाठक को अपने में इस कदर समा लेती हैं कि कविता का दर्द और पाठक के दर्द में कोई फर्क ही नहीं रह जाता। ऐसा नहीं कि वे अपनी इस उपलब्धि से अनजान थे, बल्कि ये कला उन्होंने सचेत तौर पर अपनाई थी। जो अपने ऊपर गुजरती है, तथा जो दुनिया पर गुजरती है उसे शायरी में ढालते हैं इसीलिए वह इतनी विश्वसनीय हो जाती है। 'लौह–ओ–कलम' कविता में उनके संकल्प को देखा जा सकता है

हम परवरिश–ए–लौह–ओ–कलम करते रहेंगे
जो दिल पे गुजरती है, रकम करते रहेंगे
असबाब–ए–गम–ए–इश्क बहम करते रहेंगे
वीरानी–ए–दौरां पे रकम करते रहेंगे
मंजूर ये तल्खी, ये सितम हम को गवारा
दम् है तो मदावा –ए–अलम करते रहेंगे
बाकी है लहू दिल में तो हर अश्क से पैदा
रंग–ए–लब–ओ–रुखसार–ए–सनम करते रहेंगे

1951 में रावलपिण्डी षड्यन्त्र केस में उनको जेल में डाला गया। उनको पढ़ने लिखने की कोई सुविधा नहीं दी गई थी। तो उन्होंने लिखा :

मताए–लौ–ओ–कलम छिन गई तो क्या गम है,
कि खूने दिल में डुबो ली हैं उंगलियां मैंने
जबां पे मुहर लगी है तो क्या कि रख दी है
हर एक हलकए–जंजीर में जबां मैंने।

उर्दू काव्यशास्त्र में मजमून (कटेंट) और मानी (मीनिंग) में फर्क किया गया है। इसे समझने के लिए हमें 'गुबारे अय्याम' में 'संकलित तराना–2' (1982) सुनना/पढ़ना चाहिए जिसे फैज ने जनरल जिया – उल – हक की सैनिक तानाशाही के जमाने में लिखा। बताया जाता है कि उस समय पाकिस्तान में जनरल जिया ने इस्लामीकरण की मुहिम के तहत औरतों के साड़ी पहनने पर रोक लगा रखी थी। कहते हैं कि इस रोक के खिलाफ प्रतिरोध के बतौर काली साड़ी पहनकर इकबाल बानो ने एक लाख की भीड़ में इसे गाया। तराना जनगीत है। फैज इसे 'जन–प्रतिरोध के

गीत' की विधा के बतौर विकसित करते हैं। गीत की रचना प्रक्रिया व्यक्तिगत है। तराना सामूहिक गान है, जो एक समूह की पूर्वकल्पना करता है। इसलिए अपनी रचना–प्रक्रिया के शुरुआती लम्हे से ही उसमें सामाजिकता आ जाती है, वह सिंफनी की तरह है जो छेड़ दिए जाने पर अपनी दुनिया खुद रच लेता है। बानो जब इस गीत को गा रही हैं, तो कैसेट में बज रहे गीत के बीच – बीच में श्रोताओं की ओर से उठते दो नारे साफ सुने जा सकते हैं – एक नारा है – ''नारा–ए–तकबीर, अल्लाहो अकबर' और दूसरा नारा है – 'इंकलाब जिन्दाबाद' दोनों घुलमिल गए हैं–ये घुलावट सिर्फ नारों में ही नहीं है। शब्दों के बादशाह को मालूम है कि शब्दों, बिम्बों, स्मृतियों का कैसा संयोजन जनता की किन भावनाओं को जगाएगा। दोनों नारे न सिर्फ श्रोताओं के प्रतिरोध की भावना का पता देते हैं, बल्कि इस बात का भी कि यह गीत उस जनता के दिलो – दिमाग पर कैसा असर कर रहा है जिसे वह संबोधित है। फैज ने इस तराने में इस्लाम, सूफीवाद और वेदान्त के सूत्रों , मान्यताओं और बिम्बों का इस्तेमाल किया है , लेकिन यह तराना न इस्लाम के बारे में है, न सूफीवाद के बारे में और न ही वेदान्त के बारे में। यह तराना जनता की खुद–मुख्तारी, लोकतंत्र और न्याय के लिए एहतिजाज या प्रतिरोध के बारे में है मजमून (कंटेंट) और मानी (मीनिंग) का यही फर्क है। गजब की बात है जिस समय इस्लाम के नाम पर एक तानाशाह जनता के सीने पर चढ़कर जुल्म ढा रहा था, उस समय फैज ने इस्लाम के भीतर से ही, अवाम की अपनी पारम्परिक स्मृतिया को जगाकर एहतिजाज, प्रतिरोध पैदा कर दिया । जिस समय में ये तराना लिखा गया, उस समय फैज अपनी कीर्ति के शिखर पर थे , साथ ही जिन्दगी के आखिरी मुकाम पर पहुंचे हुए भी। हालत ये थे कि जिया – उल – हक की भी औकात न थी कि फैज को जेल की सलाखों के पीछे बंद कर देते। सन् 2002 में एजाज अहमद ने एक भाषण में उन दिनों की याद करते हुए कहा – ''उनके दुश्मनों को हमने फैज साहब का पैर छूते हुए देखा । फैज साहब पहली सफ में बैठे हुए थे। पाकिस्तान के डिक्टेटर जनाब जिया – उल – हक साहब जिनके हुक्म पर फैज साहब की शायरी पाकिस्तान के टेलीविजन पर गाई नहीं जा सकती थी, स्टेज पर थे। उन्होंने देखा कि फैज साहब पहली सफ में बैठे हैं। वो उतर के आए और फैज साहब को सलाम किया तो उनका एक खास तरह का रूतबा था – अवाम में भी था और अदब के मैदान में भी था ।

प्रगतिवाद एक ऐसा रुझान है जो न्यूनाधिक हर युग और हर व्यक्ति में प्राकृतिक रूप में किसी न किसी सीमा तक विद्यमान होता है। शायर की महत्ता भी इस बात में छिपी होती है कि वह अपने युग में किस सीमा तक प्रगतिशील रहा है। अपने शाब्दिक अर्थ में भी प्रगति प्रचलित परंपराओं के विरुद्ध विद्रोह का ही नाम है। इसलिए ऐसे साहित्यकार जिन्होंने इतिहास में विद्रोह का झंडा ऊंचा किया है, महान समझे गए हैं। परन्तु बीसवीं शताब्दी की चौथी दहाई में हमारा वास्ता जिस प्रगतिवाद से पड़ा था, वह प्राकृतिक रुझान नहीं बाकायदा एक आंदोलन था। किसी आंदोलन में स्वीकृति की क्रिया रुझान के मुकाबले में अप्राकृतिक और किसी सीमा तक जोर–जबरदस्ती लिए हुए होती है। परन्तु मानवता की भलाई के लिए कभी–कभी यह जोर–जबरदस्ती आवश्यक हो जाती है, क्योंकि कभी–कभी मनुष्य अपने अंदर की बुराइयों को स्वयं नहीं समझ पाता। विशेषकर ऐसे समय में यह और भी कठिन हो जाता है जब पथभ्रष्टता बहुत आम हो चुकी हो। ऐसा समय आ जाये तो किसी न किसी को यह जबरदस्ती करनी ही पड़ती है। प्रगतिशील आंदोलन की यह जबरदस्ती भी कुछ इसी प्रकार की थी, जो मानवता की रक्षा के लिए अवश्यंभावी हो गई थी। इस वातावरण में फैज जैसे शायर दूसरे शायरों के मुकाबले में समाज को प्रभावित करने की कहीं अधिक क्षमता

रखते हैं और फेज की शायरी ने अपने इस कर्तव्य का निर्वहन भली–भांति करते हुए शायर की महत्ता को और अधिक गरिमामय बनाया है।

पिन्टू यादव
सम्प्रति : शोधार्थी महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा (गुजरात)
मोबा. 9454805623
पता : पुराना विक्रम बाग, पवनवीर अपार्टमेंट के सामने प्रतापगंज, पोस्ट मास्टर जनरल ऑफिस, प्रतापगंज बड़ोदरा–390002 (गुजरात)

संदर्भ ग्रन्थ :
1. सच जिन्दा है अब तक संपादक विश्वरंजन, पृ. 361
2. सच जिन्दा है अब तक संपादक विश्वरंजन, पृ. 372
3. ('जनमत' अप्रैल–जून, 2002, वर्ष 31, अंक 2, पृ. 70)
4. सच जिन्दा है अब तक संपादक विश्वरंजन, पृ. 370

रत्नकुमार सांभरिया के आत्मकथ्य 'शब्द बदलते युग' का सामाजिक अवलोकन

✍ **प्रदीप कुमार**

आत्मकथा लेखन की पृष्ठभूमि में लेखक अतीत का विश्लेषण वर्तमान से करता है और देखता है कि वह कहाँ खड़ा है ? रत्नकुमार सांभरिया दलित साहित्य के मुख्य कथाकार हैं, इनकी पहली कहानी 'फुलवा' हंस के मई 1997 के अंक में प्रकाशित हुई थी । इससे पूर्व लेखक एक लघुकथाकार के तौर पर ख्याति प्राप्त कर चुके थे, लेकिन मैं यहाँ लघुकथा या कहानी की चर्चा नही करूँगा, बल्कि उनके आत्मकथ्य 'शब्द बदलते युग' की बात करूंगा। जो राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा 2011 में राजस्थान साहित्यकार प्रस्तुति क्रम–87, रत्नकुमार सांभरिया शीर्षक से लेखक की रचनाओं के परिचय के साथ यह आत्मकथ्य प्रकाशित है।

लेखक स्वकथन से विगत को वर्तमान से जोड़ता है, उसे माटी की गंध से अक्स है, जो अभाव गरीबी व बीमारी को रेखांकित करता है । लेखक का ननिहाल गाँव गवालदा, मेवात, राजस्थान में तथा जन्म पालन–पोषण पैतृक गाँव भाड़ावास, हरियाणा में हुआ था, जिसकी वजह से उन्हें दोनों भाषाओं का संस्कार प्राप्त हुआ–''मिट्टी की कच्ची दीवारों पर कड़ियां पाट कर फूंस छितर मिट्टी की छत, जिसे गांव में 'कोठा' कहते थे के नीचे जन्म (बाद में छप्पर) लेकर मां के आँचल से दूध पीते उनकी लड़ियाती, तुतलाती जुबान से मुझे जिस बोली की घूंटी दी गई वह राजस्थानी और मेवाती मिश्रित थी। पगइया.पगइया चलकर घर आंगन और गांव की गलियों से मैंने जो बोली सीखी वह हरियाणवी थी। दो प्रदेशों के जो भाषायी संस्कार मुझ में पैदा हुए, वे आज मेरी शिराओं और शब्दों में हैं।[1]

लेखक कथा केंद्रित समागम–4 में दो से चार अक्टूबर 1998 को लखीमपुरखीरी में शामिल होने के लिए कार्यक्रम स्थल राष्ट्रीय नेशनल दुधवा पार्क में गये थे । कार्यक्रम समाप्त होने के पश्चात लेखक साहित्यकार साथियों के साथ पार्क भ्रमण हाथियों में बैठकर करते हैं, वे सभी घाटीनुमा रास्तों से गुजरते हुए खौफनाक, शेर की दिल दहला देने वाली गर्जना सुनकर भी रोमांचकारी दृश्यों को देखते हैं, तभी उन्हें अपने बाबा (पिता) स्व सिंहराम की याद आती है, जो हरियाणा से लखीमपुरखीरी मजदूरी के लिए वन काटने जाते थे. वे और उनके सहकर्मी लखीमपुर खीरी के इन वनों में लकड़ियों की झोंपड़ियों में रहा करते थे। शेर या अन्य जंगली जानवर आ कर चोट कर जायें, उन झोंपड़ियों के गिर्द मोटी–मोटी लकड़ियों का घेर जलता रहता था रातभर। दो आदमी पूरी रात पहरा दिया करते थे बारी–बारी। कई बार ऐसे वाकिये आये जब वे काम कर रहे होते और शेर उनके पास से भेड़िया की तरह लपक कर निकल जाता था। देर तक हमारी आंखें फटी.फटी और सांसें रूकी रहती थीं।[2]

यहाँ लेखक अनुभव, उत्थान की प्रक्रिया में वर्तमान को अतीत से जोड़कर अपने पुरखे जो रोजी–रोटी के लिए इन घने जंगलों में शेर की मांद में लकड़ी काटने का काम करते थे व सुरक्षा के लिए दग्ध लकड़ियों के घेर में सोते व पहरा देते थे । वहीं लेखक जीवट, जज्बे और संघर्ष के साथ मुकाम हासिल करता है तथा उसी जंगल में हाथियों की सवारी करके रोमांचक व खौफनाक दृश्यों को देखकर आनंदित होता है, जो युवाओं को जीवट संघर्ष की प्रेरणा देता है।

रत्नकुमार सांभरिया का बचपन अन्य दलित साहित्यकारों की तरह अभाव में गुजरा, उनके घर की कच्ची दीवारों में फूस की छान थी जो वह आंधी–तूफान के झोंको व बिल्ली के पंजों से टूटकर बिखर जाती थी, बाबा (पिता) छान के कारीगर होने के बाद भी गरीबी अभाव के कारण स्वयं की दीवारों में अच्छी छान नही डाल पाये थे । लेखक यहाँ सहज रूप में गंभीर प्रश्न उठाता है, दलित समाज हुनरमंद है, उसे रोजमर्रा की व्यवहारिक चींजे अच्छे से बनानी आती हैं, इसके बावजूद अर्थाभाव में उन चीजों का अभाव रहता है.''एक दिन का वाकया है तेज आंधी आ गई थी। वह आंधी तूफान जैसी तबाही का रूख किये थी। किसी आततायी की तरह घर में घुस आई आंधी के बढ़ते दबाव के कारण छान बल्लियों समेत उठती बैठती थी, बार–बार। मुसीबत में उपाय इख्तियार हो जाया करता है। काका फुर्ती से स्टूल पर चढ़े और पानी खींचने की नेजू (रस्सी) को छान टिकी बली में डालकर उससे लूम गये थे। उन्होंने मुझे भी ताकीद की कि मैं पूरी ताकत से रस्सी को पकड़ लूं। छान कहीं उड़ गई, कंगाली में आटा गीला हो जाएगा।[3] लेखक अभाव, गरीबी में संघर्ष करते हुए जूझता है, लेकिन स्वयं की गरीबी का दोषी गैर दलितों को नही मानता, बल्कि लेखक इसे चुनौती के रूप में स्वीकार करके उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर अग्रसर होता है। यहां लेखक अन्य दलित लेखकों से स्वयं की अलग उपस्थिति दर्ज कराता है । आर्थिक तंगी सदैव श्रमिक व बेसहारा लोगों में होती है, किंतु वही श्रमिक व बेसहारा गहनाध्ययनशीलता में संलग्न हो, तो उनकी आर्थिक तंगी से मुक्ति सुनिश्चित है–''यदि एक सच्चे साधक की तरह शब्द से सरोकार रखा जाये तो आदमी सोपान दर सोपान शीर्ष की ओर बढ़ता जाता है और जिस शख्स ने शब्दों का लंगर कस लिया हो, वह गरीबी से मैदान मार लेता है।[4] यहाँ 'शब्दों का लंगर से सीधा अभिप्राय 'गहन अध्ययनशीलता' से है। लेखक के एक–एक शब्द चयन में उनके गहन अध्ययन की प्रवृत्ति झलकती है

रत्नकुमार सांभरिया को 27–28 नवम्बर 2010 को पटना विश्वविद्यालय के सभागार में आयोजित 'अखिल भारतीय साहित्य समागम' में जाने का निमंत्रण मिला, तो उनके पास रेल, बस, हवाई जहाज से जाने का विकल्प मौजूद था । जब लेखक जयपुर हवाई अड्डा से टेक ऑफ होकर दिल्ली की ओर उड़ने लगा, तो उन्हें महसूस हुआ कि हवाई जहाज उनके गांव 'भाड़ावास' व घर की उड़ती हुई छान के ऊपर से जा रहा है, तो वे भावुक हो जाते हैं, क्योंकि लेखक ने अभावों के दृश्यों को देखा है, जब उसने पिता के साथ घर की छान को आंधी से बचाने के लिए रस्सी को जोरदार तरीके से खींचा था और आज वही बालक 40 हजार फीट ऊपर हवाई जहाज में यात्रा कर रहा है । लेखक स्वयं का युग परिवर्तन देख रहा था और वे इस युग परिवर्तन के लिए समय को नही बल्कि शब्द (गहनाध्ययनशीलता) को प्रमुख मानते हैं।

लेखक की माँ स्त्री होने के बावजूद बेटियों की शिक्षा के लिए रुचि नही दिखाती हैं, चूंकि भारतीय समाज का तानाबाना पुरुष प्रधान था, तब उनकी माँ का दृष्टिकोण सामाजिक परिस्थिति के अनुकूल था, लेकिन वही माँ लेखक का प्रवेश दिलाने स्वयं गई थी। जब शिक्षक ने जन्मतिथि जानने का प्रयास किया तो उन्होंने अनभिज्ञता जाहिर की और शिक्षक ने स्वेच्छा से 06.01.1956 दर्ज कर दी । लेखक की ''मां मांडना

कला में दक्ष थी। मांडना के लिए उनके पास कोई कैनवास तो था नहीं. घर की गोबर मिट्टी लिपी पुती दीवारों पर गेरूं और मुलतानी मिट्टी घोल कर वे मोहक मांडने मांडा करती थीं। मां के वे मांडने मौहल्ले भर में चर्चा में रहते थे। मास्टर जी बोर्ड पर लिखे स्वर व्यंजनों को बच्चों से स्टेल पर लिखवाते लेकिन मेरी आंखों के सामने मां के मांडने फिरते और मैं स्लेट पर मां के मांडनों की हूबहू नकल उतारता।[5]

शिक्षक ने जब लेखक को अक्षर ज्ञान की जगह अन्य सामग्री को उकेरते देखा, तो उन्होंने पहले टोका, समझाया, धमकाया और जब मैं उनकी बात अनसुनी करता रहा, तो उन्होंने मेरे मुंह पर दो तीन थप्पड़ रसीद कर दिये। थप्पड़ की डर भरी नसीयत ने मुझे श्यामपट्ट पर ध्यान केन्द्रित करने के लिये मजबूर कर दिया।[6] लेखक ने अपने आत्मकथ्य में शिक्षक की जगह 'गुरु' शब्द का प्रयोग किया है, जो दलित आत्मकथाओं में सिरे से गायब है। यहाँ शिक्षक द्वारा लेखक की प्रताड़ना, अक्षर ज्ञान के लिए है, जबकि 'जूठन' के लेखक का हेडमास्टर चीखकर बोला ''जा लगा पूरे मैदान में झाडू.....नहीं तो गाड़ में मिर्ची डालके स्कूल के बाहर काढ़ (निकाल) दूंगा।[7] 'मुर्दहिया' में मुंशी "जो दलित बच्चों को 'चमरकिट' कहकर अपना गुस्सा करते थे।"[8] इनके साथ अन्य दलित आत्मकथाओं में शिक्षकों द्वारा लेखकों के साथ किये गए जातीय भेदभाव को दर्शाया गया है, यहाँ रमाशंकर आर्य की 'घुटन' का जिक्र किया जाए, तो प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक वे अपने शिक्षकों से प्रताड़ित हैं। इस स्वरूप में यह आत्मकथ्य अन्य आत्मकथाओं से स्वयं को भिन्न करता है। यहाँ लेखक जातीय व आर्थिक रूप से प्रताड़ित नही होता है, बल्कि उनके प्रारंभिक लेखन से ही शिक्षकों का बराबर सहयोग मिलता है, इसलिए लेखक के आत्मकथ्य के नकार प्रतिरोध और विद्रोह मूल विषय नही बन पाये।

जब लेखक आठवीं कक्षा में था, तब उसे विद्यालयी नाटक में एकलव्य की भूमिका मिली थी, लेकिन उस नाटक की पृष्ठभूमि से लेखक का मन उचट गया था–ष्इसमें मुझे किसी गरीब और छोटी जाति के बालक के साथ भेदभाव दिखा। मुझे लगा जैसे मैंने ऐसे घिनौने नाटक में एकलव्य के रूप में भाग लेने से मना क्यों नहीं किया?[9]

लेखक के गाँव के विद्यालय में एक निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है, जिसमें लेखक दूसरा स्थान प्राप्त करते हैं । जातीय दंभ की वजह से लेखक के गाँव मे कक्षा आठ से उन्नत नही हो सका, जिससे लेखक कक्षा आठ पास करने के पश्चात बी. एस. हायर सेकेंडरी स्कूल, रेवाड़ी में प्रवेश ले लेते हैं, किंतु बाबा (पिता) के बीमार हो जाने से रोजगार छिन जाने से घर की माली स्थिति हो गयी, जिससे लेखक एक वर्ष तक ''नेकर, हाफ बाजू शर्ट पहन कर पांवों तले टूटी चप्पलें दबाये, सरदी, गरमी, बरसात पैदल ही गांव से सात किलोमीटर दूर चल कर रेवाड़ी जाना पड़ता।[10] दलित परिवार में मेहनत मजदूरी करने वाले व्यक्ति सेहत खराब हो जाने से पूरे परिवार में आर्थिक तंगी, भुखमरी जैसी समस्याओं से घिर जाते हैं । लेखक को दो साल फांको में गुजारने पड़े, जिससे लेखक प्रत्येक रविवार को रेवाड़ी मजदूरी के लिए जाता, बालश्रम को अपराध माना जाता है, लेकिन दलित समाज के पास पैतृक संपत्ति के अभाव में बालश्रम, दिहाड़ी मजदूरी करने को मजबूर थे।

लेखक ने हाईस्कूल पास करने के पश्चात अहीर कॉलेज रेवाड़ी के प्रेप में प्रवेश लिया, जो ग्यारहवीं के समकक्ष था। इसी कॉलेज से 'फॉनिक्स' पत्रिका का प्रकाशित होती थी और जिससे रत्नकुमार सांभरिया के लेखक बनने का सफर शुरू होता है। वे बी.ए. में ही 'नवभारत टाइम्स' 'आगमन' के साथ अन्य अखबारों के लिए रचनाएं लिखने लगे थे । बी.ए. पूर्ण करने के पश्चात वे बी.एड कर लेते हैं और उनके मौसेरे भाई श्री मदनलाल दहिया शिक्षक हेतु उनका फॉर्म भर

देते हैं और नये शिक्षण सत्र में उनकी नियुक्ति राजकीय प्राथमिक पाठशाला गदवास में अध्यापक के रूप में हो जाती है । वे लिखते हैं जिस दिन मैंने वह स्कूल खोला, उस दिन दो–तीन अर्द्धनग्न बच्चे स्कूल में आये थे और जिस दिन मेरा स्कूल छूटा 45 से ज्यादा बच्चे स्कूल की ड्रेस में मेरे सामने थे। यहां रह कर मैंने शिक्षा विभाग की 'शिविर' पत्रिका में कई लेख लिखे। जिनमें से एक लेख ''आदिवासी क्षेत्र की एक अध्यापकीय शाला'' ने मेरी अस्थाई नौकरी छीन ली।[11] क्योंकि लेखक ने आदिवासी क्षेत्र में विद्यालयों की वस्तु स्थिति का यथार्थ वर्णन कर दिया, जिसकी वजह से लेखक की नौकरी छिन जाती है, लेकिन कुछ ही समय पश्चात कर्मचारी चयन आयोग की परीक्षा में चयन हो जाता है और यहीं से गंभीर लेखन की शुरुआत होती है । इसके बाद 'समाज की नाक' शीर्षक से एकांकी संग्रह प्रकाशित होता है, फिर फीचर लेखन की ओर रुख होता है और 100 से अधिक फीचर लिखते हैं । लेखक का रुझान पूर्णतः लेखन की विविध विधाओं की ओर जाने लगा था और वे हंस में लघुकथा भेजते हैं, वह लघुकथा हंस में तो नही छपी, किंतु अन्य पत्रिकाओं हेतु 100 से अधिक लघुकथाएं लिखी, लघुकथा का फलक अधिक न होने के कारण अंततः लेखक कहानी लेखन की ओर रुख करता है और पहली कहानी 'फुलवा' शीर्षक से लिखते हैं, जो हंस के मई 1997 के अंक में छपी और यहीं से कथाकार के रूप में विस्तार हुआ और हिंदी की सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में कहानियां छपी। उनकी कहानियों को गरीब का रिरियाना, बिलखना, गिड़गिड़ाना, कूटना–पीटना, ठुकना, स्मिता का लुट जाना मेरी कहानियों के पात्रों को गवारा नहीं है। उनमें जीवट, जज्बा और जिजीविषा होंगे और वह पहाड़ काट कर भी अपनी राह बनाएंगे। मेरी कहानियों के पात्रों की प्रवृत्ति पीपल की तरह होती है। पीपल का छोटा सा एक बीज पत्थर को फाड़कर भी उग जाता है और अपना आकार लेता जाता है।[12]

लेखक के आत्मकथ्य में शुरुआती पांच पन्नों में जीवन संघर्ष का वर्णन है, जबकि अंतिम चार पृष्ठों में उपलब्धियों का बखान है । कुल नौ पृष्ठों के आत्मकथ्य में जातीय उत्पीड़न, शिक्षक उत्पीड़न विषय नही है, बल्कि गरीबी, बीमारी मूल विषयवस्तु है, जो लेखक को जुझारू और संघर्षशील बनाने में मदद करते हैं । लेखक के आत्मकथ्य में प्रगति का मार्ग, शिक्षार्जन की जिजीविषा, लेखन के प्रति रुचि मुख्य बिंदु है । जब तक लेखक की आत्मकथा पूर्ण रूप में नही आ जाती, तब तक इस आत्मकथ्य को किसी भी आत्मकथा के पक्ष–विपक्ष में खड़ा करना दलित लेखन के साथ बेमानी होगी किंतु आत्मकथ्य के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि रत्नकुमार सांभरिया की आत्मकथा जब भी आएगी वह परिवेश के यथार्थ कथ्य के विकास और माटी की गंध का स्वरूप ग्रहण किये होगी।

प्रदीप कुमार, शोध छात्र, हिन्दी विभाग
गांधी महाविद्यालय, उरई, जिला–जालौन (उ.प्र.)
मोबा. 8318874330

संदर्भ :

1. राजस्थान साहित्यकार प्रस्तुति–87 रत्नकुमार सांभरिया, प्रकाशक–राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, संस्करण–2011, पृष्ठ–65
2. वही, पृष्ठ–66
3. वही, पृष्ठ–67
4. वही, पृष्ठ–67
5. वही, पृष्ठ–68
6. वही, पृष्ठ–68
7. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–1999, छठी आवृत्ति 2012, पृष्ठ–15
8. मुर्दहिया, प्रो0 तुलसीराम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2012, पहली आवृत्ति 2014, पृष्ठ–24
9. राजस्थान साहित्यकार प्रस्तुति–87 रत्नकुमार सांभरिया, पृष्ठ–69
10. वही, पृष्ठ–69 11. वही, पृष्ठ–70 12. वही, पृष्ठ–73

'आओ पेपे घर चलें उपन्यास में नारी विमर्श'

चौधरी बबीता

'आओ पेपे घर चले' प्रभा खेतान का सन् 1990 में प्रकाशित उपन्यास हैं। इस उपन्यास में प्रभा खेतान ने अमेरिकी स्त्री के जीवन का वर्णन किया हैं। प्रभा खेतान (लेखिका) लॉस ऐजिंल्स में डॉ. ड्यूपाण्ट से मिलती हैं। लेखिका डॉ. ड्यूपाण्ट की सेक्रेट्ररी आइलिन के साथ रहती हैं। आइलिन के घर एलसेशियन कुत्ता (पेपे) को देखकर लेखिका डर जाती हैं। आइलिन पेपे को अपना बच्चा मानती हैं। लेखिका जब आइलिन के घर पहुँचती हैं तब शुरुआत के दिनों में उसे पेपे से डर लगता हैं। लेखिका का ऐसे पेपे से डरना आइलिन को अच्छा नहीं लगता हैं। वे लेखिका से कहती हैं तुम उससे जितना दूर भागोगी, उतना वह तुम्हें काटेगा। एक बार सहज हो जाओ। आइलिन पेपे के साथ सोती हैं और एकांत में अपनी बातें पेपे को सुनाती रहती हैं। आइलिन का अपना खुद का बेटा वियतनाम में मारा जाता हैं। आइलिन अपने जीवन में एक के बाद एक शादी करती हैं परंतु उसे पति का प्यार कभी नसीब नहीं होता हैं। आइलिन को सत्तर साल की उम्र में भी अपने से दस साल छोटे रोजर से प्रेम हो जाता हैं। रोजर को कुछ समय के बाद जब आइलिन की बिमारी के बारे में पता चलता हैं तो रोजर आइलिन को छोड़ देता हैं। आइलिन लेखिका से कहती हैं – 'औरत जब अपना दिल एक खूंटे से बाँध देती हैं, तब सारी जिंदगी रोती हैं, सारी जिंदगी।' इकत्तीस दिसम्बर की रात आइलिन पूरी रात पार्टी में खूब नाचती हैं जिससे दूसरे दिन आइलिन की तबियत ज्यादा बिगड़ जाती हैं। आइलिन की अंत में ल्यूकोमिया नामक बिमारी से मृत्यु हो जाती हैं। पेपे क्लिनिक में आइलिन की खुर्शी के पास बैठ जाता हैं तब लेखिका पेपे को देखकर अपने पास चिपकाकर रो पड़ती हैं और कहती हैं 'पेपे, वह सबकी माँ थी।' आइलिन की मृत्यु के बाद पेपे को असाइलम में भेज दिया जाता हैं।

मरील चालीस साल की दो बच्चों की माँ हैं। मरील के पति बीस वर्ष की लड़की को लेकर भाग जाता हैं। मरील की एक बेटी नेन्सी पढ़ाई में होंशियार होती हैं जबकि दूसरी बेटी लारा संगीत में होंशियार होती हैं। मरील को संगीत पसंद न होने के कारण वह लारा को मारती हैं। लारा को अपनी माँ के इस तरह का व्यवहार बिल्कुल भी पसंद नहीं आता हैं। लारा और नैन्सी दोनों अपने माँ–बाप का प्रेम और लगाव प्राप्त करना चाहती हैं परंतु ऐसा न होने पर लारा भटक जाती है और घर छोड़कर चली जाती हैं। लेखिका मरील के ऐसे स्वभाव के कारण उसे समझाती हैं कि तुम मियाँ बीबी के अहम की टकराहट में बेचारी लारा पिस जाएगी। लारा और नैन्सी अपने माता–पिता से नफरत करने लगती हैं। मरील नौकरी करके अपनी दोनों बेटियों को पढ़ाती हैं घर का सारा खर्चा चलाती हैं। वहीं दूसरी ओर डॉ. डी होलीवुड अभिनेत्री क्लारा ब्राउन के प्रेम संबंध में डूब जाता हैं। मिसेज डी. (एलिजा) अपने पति डॉ. डी से बहुत प्रेम करती हैं। डॉ. डी एलिजा को कभी अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं करते। डॉ. डी. अभिनेत्री क्लारा ब्राउन के साथ रहते हैं, पार्टी करते हैं परंतु एलिजा यह सब अकेली सहती हैं। और डॉ. डी को तलाक भी नहीं देना चाहती। एकबार जब डॉ. डी. एलिजा को तलाक न देने के लिए कहते हैं तब एलिजा एक साथ निंद की गोलिया खा लेती हैं। परंतु वे बच जाती हैं। एलिजा लेखिका प्रभा खेतान से कहती हैं मैं क्या करु, प्रभा? मैं क्लारा ब्राउन नहीं हो सकती और जार्ज को छोड़ भी नहीं सकती। मैं उससे प्यार करती हूं। बेहद। अपने से भी ज्यादा।[8] ब्यूटी थेरॉपी का डिप्लोमा लेने के बाद लेखिका सेंट लुईस डॉ. बेरी के घर जाती हैं। डॉ. बेरी का सेंट लुईस में बहुत बड़ा घर हैं। डॉ. बेरी अपनी पत्नी हेल्गा और अपने चार बच्चों के साथ रहता हैं। हेल्गा पोलिश

यहूदी हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध में हेल्गा के पिता की हत्या कर दी जाती हैं। हेल्गा के भाई की निमोनिया के कारण मौत हो जाती हैं। डॉ. बेरी द्वितीय विश्वयुद्ध में डॉ. थे। डॉ. बेरी हेल्गा से शादी कर लेते हैं परंतु हेल्गा डॉ. बेरी से शादी करके खुश नहीं थी। उसका मानना था की डॉ. बेरी ने उसके साथ शादी करके उपकार किया हैं। हेल्गा अपने बच्चो को कभी माँ का प्यार नहीं दे पाती है। हेल्गा हंमेशा पत्नी और माँ की जिम्मेदारियों से भागती रहती हैं। डॉ. बेरी के बच्चों की जिम्मेदारी सत्तर वर्ष की वृद्धा नैनी संभालती हैं। हेल्गा हंमेशा कम बोलती हैं और अपने काम में व्यस्त रहती हैं। हेल्गा के पास पैसों की कोई कमी नहीं थी। परंतु वह अपनी एक अलग पहचान बनाना चाहती हैं। हेल्गा अपना खुद का रेस्टोरन्ट चलाती हैं। लेखिका जब हेल्गा को अपने बच्चों के प्रति प्रेम न देखकर वह हेल्गा से पूछती है तब हेल्गा लेखिका से कहती हैं 'हाँ, मुझे मेरे बच्चों से प्यार नहीं। वे मरे, जीएँ या कहीं भी जाएँ।' हेल्गा स्वतंत्र जीवन जीना चाहती हैं। हेल्गा माँ और पत्नी की भूमिका से परे अपनी खुद की जिंदगी जिना चाहती हैं। किसी के एहसानों पर नहीं पलना चाहती।

हेल्गा के पास से लेखिका (प्रभा खेतान) एलिजा की बहन कैथी के पास न्यूयोर्क चली जाती हैं। कैथी 30–32 वर्ष की डॉ. ब्रैडले मूर की पत्नी और एलिजा की बहन हैं। कैथी के पति ब्रैडले मूर की न्यूयोर्क में काफी सम्पत्ति हैं। कैथी डॉ. मूर के सारे दिन पैसे उडाती रहती हैं। परंतु डॉ. मूर कभी कैथी को पैसों के मामले में कभी कुछ भी नहीं कहते हैं। परंतु कैथी स्वतंत्र होना चाहती हैं। आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती हैं। डॉ. मूर कैथी को पैसे कमाने की इजाजत नहीं देते हैं जिससे कैथी का मानना है अगर मैं डॉ. ब्रैडले के पैसे उडाउँगी तो वे मुझे नौकरी करने की इजाजत दे देंगें। कैथी और एलिजा को अपने पापा के पास से विरासत में खूब पैसा मिलता है। डॉ. ब्रैडले भी खूब पैसे कमाते हैं, परंतु कैथी कहती है 'ब्रैडी इतना कमाता है। खर्च करने के लिए भी तो मेरे पास वक्त होना चाहिए।' डॉ. ब्रैडले की कैथी के साथ दूसरी शादी हैं। डॉ. ब्रैडले को अपनी पहली पत्नी को बीस लाख डोलर देने पडे थें। कैथी के पिता ने दूसरा विवाह किया था जिससे कैथी की माँ ने परेशान होकर आत्महत्या की थीं। एक दिन कैथी अश्वेतों के हाथों बलात्कार होने से बच जाती हैं। कैथी लेखिका से कहती हैं 'प्रभा, मुझे ब्रैडी से बात करनी होगी। नहीं, प्रेम पर विश्वास नहीं उसने पहली पत्नी को छोड़ा। कल मुझे भी छोड़ देगा। मैं नहीं चाहती की मैं मम्मी की तरह होऊँ, जो डैड के आंतक में थर–थर काँपती रही थी। न मैं एलिजा की तरह दिवालिया होना चाहती हूँ। मुझे मेरा मैं चाहिए। एक मजबूत व्यक्तित्व जो सम्मान से सिर उठाकर खड़ा हो सके।' लेखिका अपना कोर्स पूरा करती हैं। उसी समय लेखिका (प्रभा खेतान) को पता चलता है कि पेपे मर गया हैं।

प्रभा खेतान का उपन्यास 'आओ पेपे घर चले' में विदेशी स्त्री की पीड़ा को सामने रखा है जिसमें एक पत्नी प्रेमिका और माँ की पीड़ा को दर्शाया गया हैं। पुरुष नारी को इस तरह पंगु बना देता है कि वह आर्थिक रुप से अपने पैरों पर खड़ी भी नहीं हो सकती।

चौधरी बबीता जगदीशप्रसाद
एम. फिल्., शोध छात्र, म.दे, गुजरात विद्यापीठ
अहमदाबाद–380018

पता : 24, विजय टेनामेंट सुरेलिया इस्टेट, रबारी कॉलोनी
अमराईवाड़ी, अहमदाबाद–380026 (गुज.)

संदर्भ संकेत :

1. 'आओ पेपे घर चले' (31)
2. 'आओ पेपे घर चले' (53)
3. 'आओ पेपे घर चले' (66)
4. वहीं, पृ.सं. (71)
5. वहीं, पृ.सं. (74)
6. वहीं, पृ.सं. (82)
7. वहीं, पृ.सं. (105)
8. वहीं, पृ.सं. (148)

राष्टपुरुष बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकर और पत्रकारिता

मूल मराठी–सुरेश साबले, बुलडाणा अनुवाद–शेखर

राष्ट्रपुरुष डॉ. बाबासाहेब बी.आर. आम्बेडकर जी ने सामाजिक न्याय का लक्ष्य हासिल करने हेतु एवं मानवमात्र के कल्याण की समग्र योजना की सिद्धान्तकी का खाका तैयार कर उसका समुचित क्रियान्वयन करने हेतु वे जीवन की अंतिम साँस तक संघर्षरत रहे है, और सामाजिक विषमता के उन्मूलन का सार्थक प्रयास वे जिन्दगी भर करते रहे है तथा इस लक्ष्य को हासिल करने हेतु उन्होंने विविध प्रकार के आन्दोलनों को सफल बनाने हेतु विशिष्ट औजारों का सकारात्मक उपयोग भी किया है। इस बात को यहाँ रेखांकित करना उचित होगा कि जिस प्रगति एवं समग्र सामाजिक विकास का ख्वाब राष्ट्रपिता ज्योतिबा फुले ने देखा था और उसे हकीकत में उतारने का भरसक प्रयास किया था, उन सपनों को संवैधानिक आधार एवं आकार देने का महनीय कार्य डॉ. बाबासाहेब बी.आर. आमबेडकर जी ने किया है। हम निश्चित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि ज्योतिबा फुले, छत्रपति शाहू महाराज के पश्चात मानव मुक्ति का, सामाजिक समता को धरातल पर उतारने का एवं सामाजिक न्याय के आन्दोलनों को और अधिक बलवान, ठोस करने का तथा उसे गतिमान करने का भरसक प्रयास अपने जीवन का उद्देश्य जानकर उसे पूरा करने का कार्य निश्चित रूप से बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकर जी ने किया है।

बाबासाहेब डॉ. बी. आर. आम्बेडकर जी ने सामाजिक आन्दोलनों के माध्यम से संघर्ष की आवश्यकता का संदेश और जरूरत को आम आदमी तक पहुँचाने के लिए अनेकों प्रभावकारी माध्यमों का इस्तेमाल किया है तथा आवश्यकता और परिस्थिति के अनुरूप उन माध्यमों का सफलतम इस्तेमाल भी किया है, इन माध्यमों अथवा साधनों में प्रमुख रूप से उनके समय–समय पर दिए गए जाग्रत करने वाले भाषणों, उनके द्वारा अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर लिखी गई किताबों, सम्पादकीय लेख, संसद में की गई बहसों और उनके द्वारा सम्पादित, प्रकाशित अखबारों का विशेष रूप से जिक्र किया जा सकता है।

बाबासाहेब डॉ. बी. आर. आम्बेडकर जी ने पत्रकारिता का आरंभ एवम् अखबारों का प्रकाशन कार्य सामाजिक एवं सामाजिक जरूरतों की पूर्ति हेतु किया है, यह बात करते हुए डॉ. आम्बेडकर जी ने भारतीय समाज को खोखला बना चुकी विभाजनकारी विषमता शोषण, सांस्कृतिक अहंकार, अन्याय–अत्याचार, विभेदकारी मानसिकता समूचा उच्चाटन और उन्मूलन करने हेतु आवश्यक समतावादी विचारों के निर्माण हेतु एवम् समता की नींव पर खड़े नवीनतम समाज के निर्माण के लिए जरूरी प्रेरणा देने हेतु बाबासाहेब डॉ. बी. आर. आम्बेडकर जी का पत्रकारिता का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। 31 जनवरी 1920 को प्रकाशित 'मूकनायक' अखबार के प्रथम अंक के सम्पादकीय लेख में वे कहते है कि,

''हमारे भारत देश के समूचे बहिष्कृत वर्ग के लोगों पर जो जुल्म ढाया जा रहा है और इसी तरह वह आने वाले दिनों में अन्याय–अत्याचार ना हो, इसके लिए जो खबरदारी हमें लेनी होगी, जिस उपाय और योजनाओं का अमल हमें सुचारू रूप से करने की आवश्यकता और जरूरत है उसे स्पष्ट रूप से व्यक्त कर उसे बताने हेतु और समाज के लोगों तक पहुँचाने हेतु और बहिष्कृत समाज की भविष्य की उन्नति एवं प्रगति हेतु तथा उन्नति के मार्ग दिखाने के लिए जरूरी विचार–विमर्श करने के लिए तथा हमारे बहिष्कृत समाज की उन्नति में बाधक समस्याओं के समग्र अवरोधों को दूर कर उसे हटाने हेतु तथा उन्हें नष्ट एवं ध्वस्त करने के लिए पुख्ता स्वरूप की चर्चा एवं विचार–विनिमय के हेतु अखबार या समाचार–पत्रों के

अलावा अन्य कोई दूसरा साधन है ही नहीं, इसके साथ–साथ यह भी जरूरी है कि समाचार पत्र याने अखबार नैतिक मूल्यों की नींव पर खड़ा रहना जरूरी है।

'मूकनायक' अखबार का प्रकाशन एवं सम्पादन कर बाबासाहेब डॉ. बी. आर. आम्बेडकरजी ने चुनौतीपूर्ण और मुश्किलों भरे कार्य की बुनियाद दृढ़तापूर्ण रखी थी, यह बात हमें अवश्य ही चकित कर देती है। डॉ. आम्बेडकरजी के कुशल नेतृत्व एवं दिशा–निर्देश तथा मार्गदर्शन द्वारा तत्कालीन अस्पृश्य समाज के सामाजिक न्याय के आन्दोलनों को जनवरी 1920 से यकीनन गति मिली है, यह बात हमें याद रखनी चाहिए। डॉ. आम्बेडकरजी ने एक ही समय में अनेक मोर्चे पर संघर्षरत रहते हुए अखबार को चेतना एवं सामाजिक जाग्रति के औजार के रूप में बेहतरीन रूप से इस्तेमाल कर समाज को प्रगति के लक्ष्य तक पहुँचाने का महनीय प्रयास किया ।

भारतीय समाज की एकता को छिन्न–भिन्न करनेवाली विभाजनकारी एवं विषमता को अक्षुण्ण रखने का कुटिल प्रयास करनेवाली चातुरवर्ण और जाति व्यवस्था और अहितकारी रीति–रिवाज, परम्परा, रुढ़ियों ने अपने शिकंजे में फंसकर छटपटाने को मजबूर, दलित, शोषित, पीड़ित विशाल शूद्र कहकर तिरस्कृत किए गए बहुजन समाज को हाशिए में ठेलकर शैक्षिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक गुलामी के बंधनों और जंजीरों में जकड़कर रखा हुआ था। इन षड़यंत्रकारी बेड़ियों में कैद शोषित पीड़ित जन समूह की व्यथा–वेदना, उन पर लगातार होनेवाले अन्याय–अत्याचारों को समाप्त तथा नष्ट एवं ध्वस्त कर उन तमाम उपेक्षितों–पीड़ितों की समूची प्रगति की योजना एवं खाका तैयार कर उनकी तमाम उम्मीदों, उनकी समस्या, पीड़ाओं को रेखांकित कर उसे विश्व मंच पर ले जाने का महत्वपूर्ण कार्य अनेक मोर्चे से डॉ. आम्बेडकरजी ने दृढ़ता से किया है, और इनमें पहले अखबार के रूप में उनके द्वारा प्रकाशित 'मूकनायक' समाचार पत्र की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण रही है।

कहा जाता है कि अखबारों में सामाजिक बदलाव की बहुत बड़ी ताकत होती है। किन्तु समाचार पत्र के रूप में उसकी बलाढ़य शक्ति दुनियां के सामने लाने हेतु उस अखबार के कर्ता–धर्ताओं में अपने लक्ष्य को हासिल करने का दृढ़ संकल्प, ईमानदारी, साहस, प्रतिबद्धता, तटस्थता, दृढ़ता, बेहद जरूरी होती है और इन्हीं कसौटियों पर पत्रकार, सम्पादक एवं प्रकाशन को खरा उतरना होता है। यूरोपिए याने पश्चिमी देशों में समाचार पत्रों को बड़े ही आदरपूर्वक "Fourth Estate of the Kingdom" कहा गया है। जनमानस को संस्कारशील बनाने का कार्य करने की जिम्मेदारी और ध्येय अखबारों का होना चाहिए। जनता की अभिरुचि के साथ–साथ जनमानस तैयार करने का जिम्मा समाचार–पत्रों का होना ही चाहिए, इसीलिए तो अक्सर कहा जाता है कि जनचेतना एवं जाग्रति कार्य करने हेतु प्रचार–प्रसार तथा अखबार के सिवा दूसरा कोई प्रभावशाली माध्यम तो हो ही नहीं सकता।

भारतीय समाज को खोखला करनेवाली मनुष्य मात्र की एकता को नकारने वाली तथा विभाजन का गुणगान करनेवाली श्रेणीबद्ध वर्ण–व्यवस्था, जातिवाद और एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से घृणा करने का, उसे अपने से कमतर समझकर छुआछूत की मानसिकता को प्रबल करने की और उसे बढ़ावा देने की घृणित मानसिकता को पूरी तरह से नकारकर और त्यागकर मनुष्यमात्र को सर्वोच्चता प्रदान कर उसे प्रतिष्ठित एवं सम्मानित करने के मूल्यों की स्थापना हो और उसे जतन किया जाए, ऐसी बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकर की दृढ़ विचारधारा थी, उनके द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित समूचे समाचार–पत्रों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि डॉ. आम्बेडकर की पत्रकारिता तथा अन्य सभी लेखन इसी मूल्यों और बुनियाद पर खड़ा रहा है। डॉ. आम्बेडकर प्रखर एवं प्रतिबद्ध पत्रकार थे। किन्तु भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में उनके अवदान की उपेक्षा हुई है। यह स्पष्ट

रूप से ज्ञात होता है, किन्तु इन दलित आन्दोलनों की प्रखरता की वजह से अथवा समझौता परस्त नीति के तहत कुछ पत्रकार, विचारक, आलोचक एवं अध्ययनकर्ता चतुराई पूर्ण तरीका अपनाकर डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी के नाम का प्रयोग अपनी सुविधानुसार हर क्षेत्र में हर कोई करते हुए दिखाई दे जाते है। इस तरह के रवैए में कुछ सम्मानजनक अपवाद भी यकीनन देखे जा सकते है।

बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी के द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, वैचारिक, साहित्यिक, आर्थिक, राजनीतिक क्रांति का बिगुल फूंकने के पश्चात् तो दलित, शोषित, पीड़ित हर एक व्यक्ति एवं समाज में सम्यक् परिवर्तन की आकांक्षाओं को धरातल में उतारने हेतु इच्छुक नवविचारों के जाँबाज, कार्यकर्ता, विचारक, लेखक, पत्रकार बड़ी तादाद में हमें दिखाई देने लगे है और उमंगों–उत्साह, उम्मीदों और विश्वास से भरपूर सभी कार्यकर्ताओं के साथ–साथ किसान, मजदूर, खेतीहर मजदूर, पिछड़े, दलित आदिवासी महिलाओं में जो जो भी अपने तथा समाज की खुशहाली और अपनी पहचान के लिए संघर्ष में जुटे हुए हो, उन सभी की समस्या और सवालों के लिए उन्होंने आन्दोलन का नेतृत्व किया है और इन सर्वहारा समाज को सम्मान एवं न्याय हासिल हो, इसलिए उन्होंने अपने स्तर पर भरसक कोशिश की है। दबे–कुचले समाज की उन्नति का लक्ष्य हासिल करने के औजार या माध्यम तथा मानवतावादी सामाजिक मूल्यों की प्रस्थापना हेतु उन्होंने अखबार पत्रकारिता की ताकत का परिवर्तन का मूल्यवान साधन के रूप में प्रयोग किया है और प्रचार–प्रसार माध्यम एवं पत्रकारिता की अहमियत को रेखांकित भी किया है। सभी मानव मात्र की समग्र उन्नति, प्रगति एवं कल्याण साधने हेतु पत्रकार के नाते सामाजिक प्रतिबद्धता को सर्वोच्चता प्रदान की तथा प्रतिबद्धता से पत्रकारिता में कार्यरत रहकर भी उन्होंने राष्ट्रहित और अपने वतन के समूचे विकास के प्रति अनदेखी कभी होने ही नहीं दी।

पत्रकारिता के विषय में अपनी भूमिका के संदर्भ में दृढ़ता से अपनी बात रखते हुए पत्रकारिता की तीन विभागों में उसे रखकर अपने विवेचन में बाबासाहेब डॉ. आम्बेडकर ने पत्रकारिता के तीन प्रमुख उद्देश्यों को दृढ़ता से रेखांकित किया 1. स्वहित की पत्रकारिता, 2. समाजहित को सर्वोच्चता प्रदान कर की जानेवाली पत्रकारिता और 3. स्वतंत्र याने सभी लोगों के लिए हितकारी पत्रकारिता की बात कर उसका विश्लेषण विचार स्पष्टता से रखते है।

पत्रकारिता के महत्व और उद्देश्यों को रेखांकित कर कहा जाता है कि कुछ प्रचार–प्रसार माध्यम याने अखबार अपना निजी अथवा आर्थिक हित साधकर अन्य लोगों का नुकसान ना हो, इसके प्रति जागरुकता बरतते है। उनकी प्रतिबद्धता में अपना हित साधते हुए दूसरों का नुकसान ना हो, समाज को हानि ना पहुँचे, यह बात प्रमुखता से होती है, परन्तु इस तरह की अपने स्वार्थ को सर्वोच्चता प्रदान करनेवाली पत्रकारिता में भारत की विविध भाषा–भाषी भिन्न–भिन्न जाति के प्रश्नों और समस्याओं को एक ही स्तर पर रखकर उसे अखबार के माध्यम से रेखांकित किया जाता है। भारत के विकराल माहौल में और विकट स्थिति में समाहित समस्या एवं सवालों को जानने और समझने तथा समाधान प्रस्तुत करने हेतु स्वतंत्र विचारधारा के समाचार–पत्र की आवश्यकता होती है, यह बात सभी को स्वीकार्य होती, इसी कमी को दूर करने हेतु हम अपना अखबार प्रकाशित करने जा रहे है और हमारी प्राथमिकता में बहिष्कृत अस्पृश्य समाज के हित की और उनके तमाम सवालात एवं समस्याओं की चर्चा एवं उसका सार्थक हल निकालने की कोशिश प्रमुख है। किन्तु अखबार प्रकाशित करने का इतना ही पर्याप्त उद्देश्य हमारा कतई नहीं है, हमारा प्रमुख लक्ष्य है कि परिवर्तन की लड़ाई में मानवतावादी मूल्यों एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध पत्रकारिता का आदर्श वतन के लोगों के सामने रखा जाए, यह दूरगामी विचार डॉ. आम्बेडकर जी की पत्रकारिता में हमें दिखाई

देता है इसीलिए हम कह सकते है कि मानवतावादी एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध पत्रकारिता का पाठ हमें डॉ. आम्बेडकरजी की पत्रकारिता से प्राप्त होता है। अखबार को प्रकाशित कर तथा पत्रकारिता के द्वारा समाज ऋण को चुकता किया जाए, यह मंशा डॉ. आम्बेडकरजी की रही है।

इतिहास, वर्तमान एवं भविष्य का दर्पण समाचार पत्र होता है, भविष्य का दिशा–निर्देश करने की जिम्मेदारी से भी अखबार को बचाया नहीं जा सकता। इसीलिए प्रसार–प्रचार का ठोस एवं निर्णायक माध्यम समझे जाने वाले अखबारों और इससे सम्बन्धित पत्रकारिता को तत्वनिष्ठा, विश्वास, प्रतिबद्धता एवं तटस्थता की उर्जा को अपने भीतर अक्षुण्ण रखने के प्रति सजग रखना होगा, इसमें चूक भारी नुकसानदेह और तकलीफ देह हो सकती है। मानवी जीवन को नये सार्थक एवं सृजनकारी विचारों के आशय से सराबोर करने के उद्देश्य के प्रति प्रतिबद्ध समाचार पत्र असल में अपने आप में ज्ञान का केन्द्र ही होता है, विद्या का विश्वविद्यालय भी होता है। लोगों को शिक्षित और जाग्रत करने का, लोगों को विवेकशील, जानकार एवं समझदार बनाने का और इसके साथ–साथ समाज सेवा करना यह अखबार का उद्देश्य और मूलभूत प्रेरणा होती है, यह मंशा पत्रकारिता में सर्वोच्च हो तो अखबार के माध्यम से समाज को सुदृढ़ बनाने का युगप्रवर्तक कार्य किया जाना संभव हो सकता है। एक पत्रकार की हैसियत से लोक चेतना और समाजसेवा का उद्देश्य साध्य करने हेतु अपनी भूमिका का निर्वाह बाबासाहेब आम्बेडकर ने निष्ठा एवं उमंग और उत्साह से किया है, यह निष्कर्ष हमें प्राप्त होता है इसीलिए डॉ. आम्बेडकर ने समाज को जाग्रत करने के उद्देश्य से अपनी पत्रकारिता में कहीं पर भी, किसी भी स्थिति में कामचलाऊ पत्रकारिता कभी की ही नहीं। डॉ. आम्बेडकरजी की पत्रकारिता का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनकी पत्रकारिता प्रचण्ड अध्ययन, सत्य का गहन अध्ययन और अन्वेषण, इन ऊसूलों पर दृढ़ता से खड़ी थी। कल्याणकारी विचारसरणी, धारदार भाषा, शैली, विरोधी एवं प्रतिपक्ष के अज्ञान, ओछी मानसिकता, मुढ़ता, दम्भ, अहंकार पर कठोर प्रहार करनेवाली निर्णायक लेखनशैली डॉ. आम्बेडकरजी के पत्रकारिता की विशेषता और पहचान थी।

बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी ने जनवरी 1920 में पहला अखबार प्रकाशित किया। इसकी उम्र दस महीने भर की ही रही। इसके पश्चात् सात वर्षों बाद अप्रैल 1927 में ''बहिष्कृत भारत'' अखबार का सम्पादक एवं प्रकाशन की चुनौतीपूर्ण जिम्मेदारी का उन्होंने वहन किया इसके पश्चात् 'जनता समाचार पत्र' 1930 में प्रकाशित किया गया और अंतिम अखबार 'प्रबुद्ध भारत' का प्रकाशन 1956 में शुरू हुआ, जो आज भी प्रकाशित हो रहा है। इन सारे अखबारों के शीर्षक पर यदि गौर और विचार–मनन किया जाए तो समाज एवं मुल्क के नेतृत्व करने की जिम्मेदारी और अपने वतन के तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक आदि का वास्तविक चित्रण एवं विश्लेषण तथा उस पर सटीकता से किया गया भाष्य डॉ. आम्बेडकर के अखबार के शीर्षक के चयन से भी और उनकी प्रतिबद्ध पत्रकारिता से शोधकर्ताओं तथा प्रबुद्ध पाठकों को भी सहजता से परिचय हो जाता है। डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी की यह दूरदृष्टि का द्योतक है कि उन्होंने उपरोक्त चारों अखबारों का सम्पादन एवं प्रकाशन उस वक्त की सामाजिक, सांस्कृतिक और आन्दोलन की जरूरतों को बखूबी ध्यान में रखकर प्रकाशित करने का युगप्रवर्तक कार्य किया है। क्योंकि हमें जाँच–पड़ताल करने पर स्पष्टता से असलियत मालूम हो जाती है कि उस समय के अखबार जान बूझकर दलित प्रश्नों और समस्याओं की अनदेखी और उपेक्षा किया करते थे। इस हकीकत को तो इस उदाहरण एवं यथार्थ से भी भली–भांति समझा जा सकता है कि जब बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी ने पाक्षिक 'मूकनायक' समाचार पत्र का विज्ञापन 1920 के जनवरी माह में पुणे

से प्रकाशित होने वाले बाल गंगाधर तिलक के अखबार 'केसरी' को भेजा था तो विज्ञापन की फीस देने की स्वीकृति देने के पश्चात भी 'केसरी' समाचार पत्र ने 'मूकनायक' प्रकाशित होने जा रहा है का विज्ञापन छापने और उसे प्रकाशित करने से साफ तौर पर इन्कार कर दिया था। इस बात से इन समाचार पत्रों के दलित विरोध एवं ओछी मानसिकता का पता सहजता से चल जाता है। यदि विज्ञापन प्रकाशित करने की बात के सम्बन्ध में विरोधी रवैया हो तो समाज जाग्रति के आन्दोलन की जानकारी एवं समाचार के सम्बन्ध में तत्कालीन अखबारों की मानसिकता किस तरह की होगी, यह बात तो आप ही स्पष्ट हो जाती है दलित उत्थान प्रगति तथा जाग्रति के सम्बन्ध में जब समाचार पत्रों के कर्ताधर्ताओं की इस तरह की दलित विरोधी भूमिका होगी तो हाथ पर हाथ धरे बैठे तो रहा नहीं जा सकता। दलितों की जाग्रति एवं आन्दोलन की खबर अखबारों में छपे इस प्रयास को अमल में लाने हेतु दलित, शोषित, पीड़ित समाज का अपना अखबार हो, यह ठोस भूमिका एवं दृष्टि तथा स्पष्ट आकलन बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी का था और इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होंने 31 जनवरी 1920 से 'मूकनायक' अखबार शुरू किया था।

बीसवीं सदी के भारत के इतिहास पर हम नजर डाले और उसकी पड़ताल करे तो पता चलता है कि शुरू के दो दशक राजनीतिक एवं राष्ट्रीय घटनाओं के अपने वतन भारत का माहौल गर्मा गया था। 1905 में बंगाल का विभाजन करने की मंशा अंग्रेजी हुकूमत ने घोषित करने पर उसका देश की जनता की ओर से व्यापक विरोध हुआ था। इसी के साथ–साथ 'हिन्दू महासभा' की स्थापना होना भी इस दशक की बहुत बड़ी घटना राजनीतिक दृष्टि से रेखांकित की जा सकती है। खुद को राष्ट्रीय विचारधारा के पोषक कहे जाने वाले अखबारों के द्वारा स्वराज्य के सामूहिक आन्दोलन की शुरूआत हो चुकी थी और देश के तमाम और भिन्न–भिन्न समाचार पत्रों में देश में इस सम्बन्ध में घठित होने वाली घटनाएं प्रतिबिंबित होने लगी थी। इस बात के अलावा सामाजिक सवालातों एवं समस्याओं के विषय में यह सारे राष्ट्रीय कहे जाने वाले अखबार की अनदेखी और उपेक्षा दृष्टि निंदनीय कही जा सकती है, वे सामाजिक प्रश्नों और समस्याओं को अपने अखबार में प्रकाशित करने हेतु उत्सुक और तैयार भी नहीं थे। सामाजिक सुधार एवं सामाजिक समस्याओं के प्रति इन अखबारों की उदासीनता और तुच्छता दृष्टि यथावत ही थी। इस तरह के असहयोग एवं निंदनीय सामाजिक और राजनीतिक माहौल में बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी ने 'मूकनायक' पाक्षिक अखबार प्रकाशित कर दलित, शोषित, पीड़ित और बहिष्कृत भारत की दबी–कुचली जनता को सम्यक् दृष्टि प्रदान करने हेतु उन्हें चेतनशील बनाने हेतु उनकी जाग्रति कर उन्हें प्रबुद्ध भारत की पहचान कराने का दृढ़ संकल्प कर उसे अमल में लाने का युगप्रवर्तक कार्य किया है, इस यथार्थ से इन्कार नहीं किया जा सकता है। हम कह सकते है कि 'मूकनायक' पाक्षिक के प्रकाशन से महाराष्ट्र की दलित, शोषित, पीड़ित बहिष्कृत जनता के समाचार पत्रों के इतिहास एवं सृष्टि को 'मूकनायक' ने नयी दिशा, नया साहस, सोच, विवेक और संघर्ष का मार्ग प्रशस्त किया है।

'मूकनायक' पाक्षिक के प्रकाशन की कहानी :–

भारत में स्थित अंग्रेजी हुकूमत ने 1917 में साऊथबेरो कमिशन की नियुक्ति भारत की भिन्न–भिन्न जातियों को मतदान के द्वारा अपने प्रतिनिधियों का चयन कर सरकार चलाने हेतु जाँच–पड़ताल करने हेतु की गयी थी। साऊथबेरो कमिशन के सदस्य भारत में भिन्न–भिन्न भागों में पहुँचकर वहां के सम्मानित एवं शिक्षित लोगों की गवाही ज्ञापन और निवेदन के आधार पर आगे की कार्यवाही करने का विचार स्पष्ट कर चुका था। साऊथबेरो कमिशन को अपने सर्वेक्षण में इस बात का पता चल चुका था कि भारत के लोग में स्वराज्य की

प्रखर माँग एवं आकांक्षाए तीव्र है। साऊथबेरो कमिशन के समक्ष अनेक लोगों ने अपनी गवाही दी, किन्तु दलित, शोषित, पीड़ित बहिष्कृत लोगों की ओर से गवाह और ज्ञापन देने वाले सर नारायण चन्दावरकर एवं विटठ्ल रामजी शिन्दे का यह स्पष्ट विचार एवं मंशा थी कि इस समाज में शिक्षित लोग ना होने की वजह से इन्हें प्रतिनिधित्व का अधिकार फिलहाल ना हो या ना दिया जाए। दोनों यह भी नहीं चाहते थे कि बहिष्कृत वर्ग के व्यक्ति द्वारा अगुवाई कर साऊथबेरो कमिशन को अपनी मंशा और मांग प्रस्तुत की जाए। ब्रिटिश सरकार भी बहिष्कृत वर्ग को अधिकार एवं प्रतिनिधित्व देने के प्रति उत्सुक नहीं थी। सबसे अहम और आश्चर्यजनक या विसंगत बात यह थी कि जो लोग स्वराज्य की बढ़–चढ़ कर मांग कर रहे थे और इसे प्राप्त करने हेतु उतावले हो रहे थे, उन सभी को बहिष्कृत समाज के लोगों को उनका स्वतंत्र लोक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो, इस बात में उन्हें कोई दिलचस्पी ही नहीं थी उन्हें तो बस अपनी ही फिकर पड़ी थी उनकी तो मांग एवं अभिलाषा थी कि बहिष्कृत वर्ग के हितरक्षण का जिम्मा भारत के लोकप्रतिनिधि के हाथों सौंप दिया जाए, और इसके लिए वे आग्रह और उत्सुक थे। इन गैर दलितों की दलितों के प्रतिनिधी तौर पर जो निवेदन और ज्ञापन ब्रिटिश हुकूमत को प्रस्तुत किया गया, वह सरासर नाइन्साफी भरा और दलित विरोध का पुख्ता सबूत पेश करता है।

साऊथबेरो कमिशन की ओर से अपना पक्ष रखने हेतु और दलितों के प्रतिनिधी के नाते ज्ञापन और निवेदन करने हेतु बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी को आमंत्रित नहीं किया गया था। इस बात की प्रमुख वजह यह थी कि डॉ. अम्बेडकर मुम्बई के सिडेनहेम कॉलेज जो कि सरकारी कॉलेज था, उसमें अर्थशास्त्र के प्रोफेसर थे, इस वजह से शायद किसी भी सार्वजनिक और सामाजिक संस्थाओं से सम्बद्ध होकर उन्हें सरकार और सरकार द्वारा नियुक्त किसी भी संस्था को ज्ञापन, निवेदन देने हेतु अलिखित नियम या प्रावधान का अवरोध होने के कारणों से डॉ. आम्बेडकर साऊथबेरो कमिशन को व्यक्तिगत तौर पर निवेदन नहीं दे पा रहे थे किन्तु दलित, शोषित, पीड़ित, वंचित बहिष्कृत समाज के सच्चे हितैषी होने के कारण अपने समाज को लोकप्रतिनिधी के अधिकार से बहिष्कृत समाज को वंचित किया जाना, उनके हकों का सरासर हनन किया जाना, डॉ. आम्बेडकरजी को कदापि स्वीकार्य नहीं था। इसीलिए चाहे कुछ भी हो जाए, अपनी नौकरी भी क्यों ना गंवानी पड़े, लेकिन साऊथबेरो कमिशन के समक्ष समाज के हितों की रक्षा हेतु और उन्हें उचित लोकप्रतिनिधित्व का अधिकार प्राप्त करने हेतु ज्ञापन और निर्णय देने का ठोस निर्णय लेकर डॉ. आम्बेडकरजी ने भारत के गवर्नर से पत्राचार किया और इस कार्य में उन्हें सफलता हासिल हुई तथा साऊथबेरो कमिशन के समक्ष बहिष्कृत समाज के प्रतिनिधी के तौर पर अपने विचार व्यक्त कर निवेदन प्रस्तुत करने का सुखद अवसर प्राप्त हुआ, जिसका उन्होंने सार्थक उपयोग किया और स्पष्टता से कमिशन को बताया कि बहिष्कृत समाज हिन्दू से सभी दृष्टि से अलग है। उनके प्रतिनिधी उन्हीं के समाज से निर्वाचित होना जरूरी है। डॉ. आम्बेडकरजी को आशंका या संदेह था कि बहिष्कृत वर्ग की ओर से जो निवेदन विट्ठल रामजी शिन्दे ने साऊथबेरो कमिशन में प्रस्तुत किया था, उसकी वजह से बहिष्कृत समाज निश्चित रूप से राजनीतिक याने लोकप्रतिनिधित्व के अधिकारों से वंचित हो जाएगा। क्योंकि विट्ठल शिन्दे जी ने बहिष्कृत समाज का वोटर या मतदाता होने के लिए जिस पात्रता का सुझाव दिया था, वह पूरी तरह गैर जिम्मेदाराना और अव्यवहारिक ही था क्योंकि 1919 में केवल गिने–चुने व्यक्ति ही सरकारी मान्यता प्राप्त पाठशाला से चौथी कक्षा पास थे और उनकी सालाना आमदानी 144 रुपया होगी। उस जमाने में बहिष्कृत समाज के व्यक्ति की सालाना आमदानी चालीस रुपया भी नहीं हो पाती थी। विट्ठल रामजी शिन्दे के यह दोनों सुझाव अव्यवहारिक होने के कारणों से उन्हें

खारिज किया जाना जरूरी था।

डॉ. अम्बेडकरजी ने साऊथबेरो कमिशन के समक्ष प्रस्तुत किए गए निवेदन में माँग की थी कि बहिष्कृत वर्ग के लोगों को मतदान के अधिकार के साथ–साथ उन्हें अपने समाज का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए इसीलिए जरूरी है कि उन्हें उम्मीद्वार के रूप में चुनाव में खड़ा होने का, चुनाव लड़ने का अधिकार मिलना जरूरी है। इसी के साथ–साथ डॉ. आम्बेडकरजी ने माँग की थी कि बहिष्कृत समाज के प्रतिनिधी का चयन किए जाने हेतु उनके लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र बनाया जाए और इसके लिए बहिष्कृत वर्ग के लोगों की जनसंख्या को आधार बनाए जाए और लोकसंख्या के आधार पर बहिष्कृत वर्ग के लोकप्रतिनिधी की संख्या तय की जाए।

ब्रिटिश हुकूमत द्वारा नियुक्त साऊथबेरो कमिशन को बहिष्कृत वर्ग की ओर से मांग पत्र प्रस्तुत करने के लिए तैयारी करते हुए बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी ने यह बात पक्की तरह से समझ और जान ली थी कि अस्पृश्य समाज के राजनीतिक अधिकारों की मांग, उनकी समस्या और प्रश्नों का बयान और जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व की मांग, जिम्मेदारी मेरा कार्य है और उसे उन्होंने कर्तव्य भावना से और प्रभावपूर्ण तरीके से निभाकर प्रस्तुत किया है। इसी के साथ–साथ डॉ. आम्बेडकर यह बात भी अच्छी तरह से समझ चुके थे कि यदि बहिष्कृत वर्ग के अधिकारों, उनके लोकप्रतिनिधी के हकों को, उनकी समस्या और सवालातों को गंभीरता से और ठीक से नहीं प्रस्तुत किया गया तो उन्हें अपने राजनीतिक अधिकार प्राप्त होना असंभव हो जाएगा। इसीलिए अस्पृश्य समाज की समस्या, उनके सवालात और उनके लोकप्रतिनिधित्व के अधिकारों के प्रश्नों पर लगातार एवं प्रभावशाली तथा ठोस रूप से प्रस्तुत किया जाना जरूरी है और इसके लिए उचित माध्यम, फोरम या संस्था का होना अतिशय आवश्यक है। यदि हम केवल तत्कालीन बाम्बे प्रेसीडेन्सी याने बाम्बे राज्य का ही, जिसमें आज के महाराष्ट्र, गुजरात एवं सिंध, कर्नाटक राज्य सम्मिलित थे का विचार करे तो इस बाम्बे राज्य में अनेकों समाचार पत्र प्रकाशित होते थे, किन्तु हकीकत और यथार्थ यह भी था कि सारे अखबारों का बहिष्कृत वर्ग की समस्या उनके प्रश्न से दूर–दूर तक कोई लेना–देना नहीं था क्योंकि अस्पृश्य समाज की समस्या और प्रश्न यह अखबार अपनी समस्या और सवाल नहीं समझते थे और यह वास्तविकता और हकीकत थी। इसके साथ इस बात को भी रेखांकित करना जरूरी है कि पुणे से शिवबा जानबा काम्बले जी सन् 1908 से 'सोमवंशी मित्र' अखबार का सम्पादन और प्रकाशन कर रहे थे। किन्तु यह अखबार भिन्न–भिन्न जाति में बंटे समूचे बहिष्कृत वर्ग का प्रतिनिधित्व करने में कमजोर और नाकामयाब साबित हो रहा था। क्योंकि इस अखबार को समूचे बहिष्कृत वर्ग के एक जाति का अखबार के रूप में जाना जाता रहा था। इसी दिक्कतों के चलते सम्पूर्ण अस्पृश्य समाज के अधिकारों की चर्चा करने हेतु और उनकी समस्या एवं प्रश्नों के हल सुझाने हेतु मार्गदर्शन करने हेतु तथा उनकी तमाम समस्या को अखबार में रेखांकित किए जाने के लिए और समस्या और प्रश्नों का उचित समाधान निकालने हेतु और इसके द्वारा समूचे बहिष्कृत समाज का भविष्य संवारने के लिए समाचार पत्र की आवश्यकता डॉ. आम्बेडकर तीव्रता से महसूस कर रहे थे, इस यथार्थ और इतिहास को याद रखना होगा। अस्पृश्य समाज की समूची समस्या और सवालातों को दर्ज कर उसे विश्व पटल पर रखकर बहिष्कृत वर्ग की उन्नति का उज्जवल रास्ता बनाने के लिए अखबार की जरूरत को डॉ. आम्बेडकर ने समझा और इसी समस्या का हल खोजते हुए तथा सदियों–सदियों से शोषित, पीड़ित रहे और जुल्म सहते आए तथा प्रतिरोध किए बिना मूक बनकर अन्याय सहते आए मूक जनता के व्यापक हितों की रक्षा, उनकी प्रगति, विकास का लक्ष्य हासिल करने के लिए और इसके साथ–साथ मूक जनता के मन में उठ रहे

सवालात एवं विचारों को अभिव्यक्त करने का मंच प्रदान करने हेतु 31 जनवरी 1920 को 'मूकनायक' शीर्षक से सम्पन्न पाक्षिक अखबार के जन्म की जिम्मेदारी स्वीकार कर उसका प्रथम अंक प्रकाशित किया गया। यहां हमें यह बात अच्छी तरह समझने और ध्यान में रखनी होगी कि सामाजिक जीवन में और राजनीति में प्रत्यक्ष रूप से पदार्पण करने के कई वर्ष पूर्व ही दूरदृष्टि के युगपुरुष बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी ने राजनीति और समाज कार्य की प्रथम पायदान के रूप में अखबार को अहमियत देकर उसको अव्वल या पहला स्थान दिया है। इसीलिए इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि 'मूकनायक' पाक्षिक समाचार पत्र की शुरूआत और उसका जन्म तत्कालीन भारत के बहिष्कृत वर्ग के मुक्ति संग्राम को चेतनाशील बनानेवाला उसे उनमें उमंगों, उत्साह का, संघर्ष का नवविन देने वाले संजीवनी बूटी के रूप में रेखांकित किया जाना अतिशयोक्ति नहीं कही जा सकती।

'मूकनायक' पाक्षिक अखबार के माध्यम से बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकर द्वारा दलित, शोषित, पीड़ित आदिवासी बहुजन समाज का जो कि सदियों से मूक और मूकदर्शक रहा है, उसका नेतृत्व करने की जिम्मेदारी को वहन करने का, उसे दृढ़ता से अपने कांधों पर लेकर चलने का यह कर्तव्यभावना एवं प्रतिबद्धता का संकेत और आरंभ निश्चित रूप से कहा जा सकता है। मुम्बई के सिडनहेम कॉलेज, जो कि सरकारी महाविद्यालय था, उसमें अर्थशास्त्र विषय के अध्यापन का कार्य करने की वजह से 'मूकनायक' समाचार पत्र के सम्पादक के रूप में अस्पृश्य समाज के युवा पाण्डुरंग भटकर नाम अंकित किया गया था। किन्तु 'मूकनायक' का सम्पादन और प्रकाशन का समूचा कार्य डॉ. आम्बेडकर जिम्मेदारी से कर रहे थे। पाण्डुरंग भटकर ने उस जमाने में अन्तर जातिय विवाह किया था और इसकी वजह से उन्हें बड़ी यातना और कष्ट उठाने पड़े थे।

पाण्डुरंग भटकर जैसे युवा व्यक्ति को 'मूकनायक' पाक्षिक अखबार के सम्पादक का जिम्मा सौंपकर सामाजिक बदलाव के लिए अगुवाई करनेवाली बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी की दृष्टि और संकल्प के सहजता से दर्शन होते है। 'मूकनायक' पाक्षिक समाचार पत्र का आरम्भ किया जाना डॉ. आम्बेडकरजी के आगामी संघर्षपूर्ण व प्रखता से परिपूर्ण जीवन का आरंभ कहना और निष्कर्ष प्राप्त करना उचित है। 'मूकनायक' के प्रथम अंक में ही अखबार के शुरू किए जाने के सम्बन्ध में अपनी पुख्ता विचारधारा एवं भूमिका के सम्बन्ध में अपनी बात कहते हुए डॉ. आम्बेडकरजी दृढ़तापूर्ण वाणी में कहते है कि ''सभी जातियों की उन्नति, प्रगति, विकास और कल्याण कैसे होगा इस सम्बन्ध में सर्वसमावेशक याने सर्वजन हिताय की भूमिका का वहन किए जाने की दृष्टि एवं निश्चय से अखबार तो अवश्य ही होना चाहिए। इस तरह की व्यापक भूमिका का निर्वाह यदि समाचार–पत्र नहीं लेंगे तो परिणामस्वरूप समस्त जनता का अहित होना, सभी का नुकसान होना तो निश्चित है। व्यक्ति स्वार्थ से प्रेरित अथवा कुछ लोगों के हितों और स्वार्थों का ख्याल रखकर की जाने वाली पत्रकारिता और ऐसे पत्रकार जिस अखबार में कार्यरत है और स्वार्थ से प्रेरित सम्पादक एवं प्रकाशक के हाथों में जो समाचार पत्र है, वह तो अपने साथ–साथ अन्य लोगों को भी निश्चित रूप से हानि पहुँचाने में कार्यरत है, यह यथार्थ हमें समझ लेना जरूरी है।

बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकर द्वारा 'मूकनायक' पाक्षिक के प्रथम अंक याने 31 जनवरी 1920 के अखबार में व्यक्त विचार एवं सम्पादकीय चिंतनपूर्ण निष्कर्ष प्रसार माध्यमों के और विशेष रूप से अखबारों की नैतिक प्रतिबद्धता की माँग और आवश्यकता को स्पष्टता से रेखांकित करते है, 'मूकनायक' पाक्षिक का रजिस्ट्रेशन नम्बर बी–1430 था तथा यह शनिवार के दिन प्रकाशित किया जाता था। इस अखबार का सम्पादकीय एवं प्रकाशकीय कार्यालय 14, हरारवाला बिल्डिंग, डॉ. बाटलीवाला रोड,

पोयबावड़ी, परेल, मुम्बई में स्थित था। 'मूकनायक' अखबार के आर. मि. के मनोरंजन प्रिन्टिंग प्रेस से छपा करता था। 'मूकनायक' अखबार के शीर्षक के नीचे मराठी के सत्तरहवीं सदी याने मध्ययुग के रूप में जाने वाले जमाने के संत कवि तुकाराम के निम्नलिखित पदों को शामिल किया गया था, मराठी भाषा में जिसे अभंग कहा जाता है, वह दोहा इस प्रकार है –

''क्या करू अब फिजुल की पर्वा
खुले आम मुँह बजाया ।
कोई नहीं दुनियां में मूक जनता का समझ लो
शर्म करने से नहीं होगा सार्थक हित।।''

बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकरजी ने जब 1920 के जनवरी माह में 'मूकनायक' अखबार प्रकाशित किया उस जमाने के मराठी समाचार पत्र की पहचान एवं लक्ष्य तथा निष्ठा सूचित करने हेतु इस तरह के अन्य दोहे, पद, सुभाषित अपने अखबार के शीर्षक के नीचे देने का चलन हुआ करता था और उसी चलन या पद्धति का निर्वाह 'मूकनायक' अखबार का खाका बनाने में अथवा रचना प्रक्रिया का निर्वाह करने में अपनाया गया था। संत शिरोमणी तुकाराम जी के बेहद आशय सम्पन्न पद अथवा दोहे का इस्तेमाल कर मूक समाज के आहत और दुःखी मन की भावना को व्यक्त किया गया जान पड़ता है।

महाराष्ट्र के कोल्हापुर रियासत के माणगाँव में बहिष्कृत अथवा अस्पृश्य समाज के प्रथम कॉन्फ्रेंस में, जो कि मार्च 1920 को आयोजित की गई थी। उसके अध्यक्ष डॉ. बी.आर. आम्बेडकर थे और उद्घाटक कोल्हापुर नरेश छत्रपति शाहू महाराज थे। इसके पश्चात् नागपुर में मई 1920 को दूसरी कॉन्फ्रेंस का आयोजन छत्रपति शाहू महाराज की अध्यक्षता में किया गया। इस सम्मेलन में मुख्य वक्ता डॉ. आम्बेडकरजी थे। इस हिसाब से अध्ययन करे तो जनवरी 1920 में 'मूकनायक' अखबार की शुरूआत करना और मार्च में 1920 में माणगाँव के सम्मेलन की अध्यक्षता करना और इसके बाद नागपुर के सम्मेलन में मुख्य वक्ता के रूप में शिरकत करना और जनसमुदाय को सम्बोधित कर बहिष्कृत जनता में चेतना जमाने के लिए भरसक प्रयास करना डॉ. आम्बेडकरजी के सार्वजनिक जीवन के शुरूआत के तीन अहम् पड़ाव कहे जा सकते है। इसके बाद डॉ. अम्बेडकर अपनी उच्च शिक्षा का लक्ष्य हासिल करने के उद्देश्य से मुम्बई के सिडेनहोम कॉलेज की अच्छी खासी नौकरी और वेतन की परवाह ना कर 5 जुलाई 1920 को ब्रिटेन के लंदन में पहुँच जाते है और वहाँ से 3 अप्रैल 1923 को भारत लौट आते है। मैं डॉ. आम्बेडकर का उच्च शिक्षा हेतु 1920 में विदेश जाने का जिक्र इसलिए करना जरूरी समझता हूँ कि 31 जनवरी 1920 को शुरू किया गया 'मूकनायक' अखबार को डॉ. आम्बेडकरजी की गैरहाजरी में जिसे इस समाचार पत्र को सुचारू रूप से चलाने का जिम्मा सौंपा गया था, उस मण्डल ने अपने कर्तव्य का निर्वाह जिम्मेदारी समझकर नहीं किया। इसी बीच डॉ. आम्बेडकर द्वारा नियुक्त सम्पादक को कार्यमुक्त कर 'मूकनायक' के सम्पादन कार्य की जिम्मेदारी ज्ञानदेव ध्रुवनाथ घोलप को प्राप्तु हुई। किन्तु आखिरकार अक्टूबर 1920 को लगभग दस माह के अल्प कार्यकाल में ही 'मूकनायक' का अंक प्रकाशित होना बन्द हो गया।

प्रसार माध्यम याने समाचार पत्र और समाजहित में लिखा गया साहित्य समाज को दिशा–निर्देश और मार्गदर्शन करने की जिम्मेदारी भरा कार्य करता है, या उससे इस तरह की माँग और अपेक्षाएं की जाती है। इसी तरह साहित्य व समाचार पत्र समाज की मनोधारणा का भी निर्माण करने का कार्य करते है। इसी के साथ–साथ अखबार, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक पत्रिकाओं के द्वारा तयशुदा अथवा निश्चित याने सम्पादक और प्रकाशक के मनमस्तिष्क में बसे और उस विचारधारा के प्रचार–प्रसार हेतु चलाए जा रहे प्रसार माध्यमों के द्वारा अपने नियत विचारों की अभिव्यक्ति और प्रचार–प्रसार करने का कार्य बखूबी किया करते है। तयशुदा विचारों के माध्यमों से कुछ विशिष्ट भूमिकाओं का प्रचार एवं समर्थन किया जाता है और उसे बढ़ावा दिया जाता है इससे यह बात तो आप ही स्पष्ट हो जाती है कि प्रचार–प्रसार माध्यमों के द्वारा अभिव्यक्त होने वाली विचारधारा या तो उन–उन प्रसार माध्यमों से और अपनी–अपनी तय भूमिकाओं के साथ आविष्कृत होती ही है और इन विचारधारा की खासियत

और विशेषता यह है कि अखबार या अन्य प्रसार माध्यमों से व्यक्त होनेवाली विचारधारा और भूमिका का प्रभाव पाठकों को और उसे सुनने वाले हर एक व्यक्ति के मानस पटल पर भी निश्चित रूप से होता है। यह मुखर विरोध के रूप में या समर्थन के रूप में भी हो सकता है। यह बात तो पाठकों और सुनने वालों की मनोभूमिका, उसकी विचारधारा एवं उसके परिवेश पर भी कुछ हद तक निर्भर करती है। प्रसार माध्यमों से व्यक्त विचारों से विवेकवादी दृष्टि से सोचने को भी बढ़ावा निश्चित मिलता है। संक्षेप में कहें तो विचारों को ग्रहण करना व्यक्ति की मनोभावना और उसके व्यक्तित्व पर भी निर्भर होता है। एक निष्पक्ष और विवेकवादी अखबार के रूप में जब हम 'मूकनायक' की भूमिका और कार्य की जाँच–पड़ताल करते हैं तो हम पाते है कि 'मूकनायक' अखबार ने चेतना जगाने का और लोगों में अच्छे–बुरे की समझ विकसित करने का तथा पाठकों को विवेकशील बनाने की भूमिका का निश्चित रूप से और जिम्मेदारी से वहन किया है। इस दृष्टि से यदि हम 'मूकनायक' के उद्देश्य भरे कार्य को परखे तो इस अखबार ने जड़ और मूक समाज में परिवर्तन लाने का ऐतिहासिक कार्य निश्चित रूप से किया है। बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आम्बेडकर अपने सार्वजनिक जीवन में जिन–जिन मोर्चे पर लड़ाई लड़े है और जिस भी मोर्चे पर उन्होंने बहिष्कृत वर्ग का नेतृत्व किया है, उन सभी मोर्चे पर संघर्ष करने हेतु जिन–जिन साधनों, माध्यमों की उन्हें आवश्यकता महसूस हुई उन सभी साधनों का उन्होंने बड़ी ही सजगता से इस्तेमाल किया है और उन तमाम साधनों की गहन जाँच–पड़ताल करने के पश्चात् ही उसका यश प्राप्ति हेतु उपयोग किया है, ऐसा निष्कर्ष हमें प्राप्त होता है।

'मूकनायक' समाचार पत्र के जनवरी 2020 में एक सौ वर्ष पूरा होने पर सारी अतीत की घटनाओं के साथ–साथ हम जब 'मूकनायक' के युगप्रवर्तक कार्य में भागीदारी की चर्चा और मनन करते हैं तो हम पाते है कि 'मूकनायक' पाक्षिक के द्वारा दलित, शोषित, पीड़ित, वंचित समाज की आशा–आकांक्षाओं का पल्लवित करने का पहला प्रयास तो निश्चित रूप से जिम्मेदारी की भावना से ओतप्रोत होकर किया है, निष्कर्ष को तो अवश्य ही रेखांकित कर उसे कबूल करना होता है, इस दृष्टि से 'मूकनायक' अखबार के सामाजिक चेतना जगाने के कार्य का ऐतिहासिक विशेषता एवं महत्व है, क्योंकि सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक क्षेत्र के साथ–साथ राजनीतिक मोर्चे पर भी बहिष्कृत समाज को इस पाक्षिक ने अपने बलबूते अपनी दबंग स्थिति और मुकाम तथा स्थान या बुनियाद खड़ा करने के लिए निश्चित रूप से प्रेरित किया है, उन्हें इसके लिए सम्यक् मार्गदर्शन कर अपनी जिम्मेदारी का यथोचित वहन किया है समूचे बहिष्कृत समाज के मन–मस्तिष्क में अस्मिता बोध जगाने का अद्वितीय और अनोखा कार्य 'मूकनायक' समाचार पत्र ने अपने दस माह के अल्प कार्य समय में निश्चित रूप से किया है यह कार्य सुदृढ़ लोकजीवन का निर्माण और सृजन करने का तो अवश्यक ही था और लोगों को शिक्षित तथा उन्हें जागृत करने का महान साहस भरा वह प्रयास था। 'मूकनायक' के माध्यम से बहिष्कृत वर्ग की समूची चेतना के इस आविष्कार के 31 जनवरी 2020 को एक सौ वर्ष पूरे हो चुके है। 'मूकनायक' पाक्षिक अखबार की शताब्दी वर्ष में हम सभी की जिम्मेदारी बनती है कि हम डॉ. आम्बेडकरजी की युग प्रवर्तक पत्रकारिता को याद करे। समूचा दलित विश्व डॉ. आम्बेडकर की चेतनाधर्मी पत्रकारिता को 'मूकनायक' की शताब्दी के अवसर पर विनम्र अभिवादन का फर्ज अदा करता है।

ए–106, हिल अपार्टमेंट, रोहिणी,
सेक्टर–13, दिल्ली–110085
मोबा. 9873843656

संदर्भ ग्रंथ :

1. डॉ. आम्बेडकर चरित्र–खण्ड–1 लेखक चांगदेव खैरमोडे ।
2. 'मूकनायक' 31 जनवरी 1920
3. पत्रकार डॉ. आम्बेडकर–लेखक डॉ. (प्रो.) गंगाधर पानतावेण।
4. आम्बेडकरवादी आन्दोलन के अखबार– ले. डॉ. (प्रो.) विनोद उपरवट।

प्रसाद के साहित्य में नारी विषयक दृष्टिकोण

डॉ. कुलदीप कौर

– पिछले अंक का शेष भाग

'तानसेन', 'चन्दा' और 'ग्राम' नामक कहानियों में नारी–चित्रण में लेखक ने प्रेम–सभर, कोमल हृदया नारी–चरित्र के वैशिष्ट्य को तो प्रतिपादित किया है। साथ ही उन में नारी–सुलभ आत्म–गौरव और दृढ़ मनोबलयुक्त मानव–चरित्र की पहचान भी मिलती है। 'चन्दा' की नायिका जंगली–प्रदेश की कोल युवती है, जो हीरा के लिए प्राण त्यागने के लिए तैयार है लेकिन रामू द्वारा धोखे से प्रेमी की हत्या होने पर बहादुरी और साहस के साथ कुशलतापूर्वक रामू की भी हत्या करती है। एक प्रकार से प्रसादजी ने नारी–सुलभ गुणों के साथ आवश्यकता पड़ने पर नारी पुरुष की भाँति अपने शारीरिक एवं मानसिक बल का परिचय भी देती हैं 'ग्राम' कहानी की नायिका भौतिक–जीवन के समग्र सुख–सुविधा से वंचित होकर भी जिस दृढ़ मनोबल के साथ जीवन संघर्ष का सामना करती है वह भारतीय नारी की अथाह शक्ति का परिचायक ही कही जा सकती है।

मातृभूमि के प्रति कर्तव्यपरायणता, राष्ट्रप्रेम, अपने साहस, बलिदान एवं प्रेम के लिए त्याग की भावना का प्रबल रूप 'पुरस्कार' कहानी की नायिका मधुलिका के चरित्र में पाया जाता है। मातृभूमि की अनुरागिनी मधुलिका में वैयक्तिक प्रेम की अपेक्षा राष्ट्रीय प्रेम एवं सामाजिक कल्याण की भावना अधिक मुखरित हुई है। कोई विदेशी पुरुष अपनी मातृभूमि को छीन ले, चाहे उसका अपना प्रेमी ही क्यों न हो? यह बात मधुलिका के लिए असह्य थी। अतः वह अपने प्रेमी के षड़यंत्र को निष्फल बनाकर कौशल राज्य को परतंत्र होने से बचा लेती है और अंत में अपने प्रेमी के साथ–साथ स्वयं भी मृत्यु–दण्ड की सहभागिनी बनने को तैयार होती है। इस प्रकार एक सामान्य एवं निर्धन–स्त्री भी समस्त राष्ट्र के कल्याण के लिए महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है । यह बात प्रसादजी के युगीन–चेतना के अनुरूप उनके राष्ट्रीय प्रेम को उजागर करती है जहाँ समाज और राष्ट्र के उत्थान में नारी के योगदान को दर्शाया है।

राष्ट्र एवं समाज में आपसी तौर पर हिन्दू–मुस्लिम एकता तथा भातृभाव कायम करने का प्रयास 'सलीम' कहानी की नायिका प्रेमा द्वारा हुआ है। वह वर्षों से अपनी बस्ती के पठान मुस्लिम युवकों के साथ भाई–बहन सा रिश्ता रखे हुए थी। प्रेमा मुस्लिम एवं दुष्ट सलीम को भी अपने यहाँ आश्रय देकर अतिथि–सेवा, सत्कार का भी पूर्ण रूप से निर्वाह करती है। इस प्रकार प्रेमा समाज को सुव्यवस्थित, सुगठित एवं प्रेममयी वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। प्रसादजी की **'भिखारीन', 'गुदड़ी में लाल'** तथा **'जहाँआरा'** नामक कहानियाँ भारतीय समाज के गौरव का परिवहन करनेवाली कहानियाँ है। 'भिखारीन' कहानी की अभावग्रस्त नायिका अपने आत्म–सम्मान और गौरव के लिए समस्त संभावित सम्पन्नता के मोह को त्यागती हुई पायी जाती है। इस नारी चरित्र के माध्यम से लेखक के द्वारा समकालीन, पराधीन और निर्धन जनता के प्रति एक शिक्षात्मक संकेत भी निरूपित माना जा सकता है। दीर्घकालीन जीवन संघर्ष को झेलते हुए 'अपने स्वाभिमान से वंचित जनता के सामने भिखारीन का यह आदर्श चरित्र उनमें पुनः आत्म–सम्मान और गौरव की भावना को जागृत करने में सक्षम है। प्रसादजी की यह युगीन चेतना निःसंदेह समाज मंगल की कामना से प्रेरित प्रतीत होती है।

'गुदड़ी में लाल' की वृद्ध नायिका भी अपनी प्रौढ़ावस्था में आत्मगौरव से दैदीप्यमान प्रतीत होती है। वृद्धावस्था के कारण अपने जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक परिश्रम करने में असमर्थ होने पर जब बाबू रामनाथ द्वारा दया से प्रेरित सहायता की इच्छा व्यक्त करने पर भी वह स्वाभिमानी वृद्धा अपने परिश्रम के अनुरूप ही पारिश्रमिक प्राप्त करने की कामना करती है। इस प्रकार दया में मिली हुई आर्थिक सम्पन्नता की भीख भी दरिद्र भारतीय नारी के लिए कोई मायने नहीं रखती।

'जहाँआरा' कहानी की नायिका जहाँआरा दया, ममता, पितृ–प्रेम आदि गुणों से गरिमामण्डित होती दिखाई देती है। पिता को विपत्ति में पड़े हुए देख जहाँआरा अपने जीवन के समस्त सुख एवं ऐश्वर्य की अपेक्षा कैद में पड़े

रुग्ण पितृ की सेवा करते हुए अपने जीवन का बलिदान दे देती है। कहानी में एक ओर क्रूर शासक औरंगजेब है तो दूसरी ओर उसी की बहन जहाँआरा का गौरवमयी चरित्र। इन दोनों ` विपरीत चरित्र को दिखाकर प्रसादजी ने मुस्लिम–समाज की नारियों की कर्तव्यनिष्ठा के दिग्दर्शन करा उन्हें समाज में सम्माननीय स्थान दिया है।

नारी–विषयक प्रसादजी की अवधारणा केवल उनके गौरव गान तक सीमित नहीं है। प्रसादजी ने नारी–चरित्रों में मानवीय गुणों के उज्जवल रूप को प्रतिपादित करके पुरुष के समान ही समाज में सम्मान की अधिकारिणी के रूप में स्थापित किया है। नारी–सहज कोमलता, उदारता, क्षमा, करुणा, दया, प्रेम तथा आत्म सम्मान की भावना का निरूपण तो लेखक ने उत्कृष्ट रूप से किया ही है, लेकिन लेखक इसके भी आगे बढ़कर उनके सामाजिक महत्व एवं राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण योगदान को स्थापित करके भारतीय नारी की तेजोमय गरिमा को प्रमाणित करते हैं। भारतीय नारी केवल भाव–जगत के उत्कृष्ट पात्र नहीं है। भौतिक जगत के संघर्षों और तत्सम्बन्धी समस्याओं के लिए भी निरन्तर जुझती हुई बतलायी है। देश के सांस्कृतिक और राष्ट्रीय गौरव के निर्वाह तथा उसकी आन, बान, शान को बनाये रखने में भारतीय नारी के महत्व को प्रतिपादित करके समाज और राष्ट्र से साक्षात्कार करवाया है। प्रसादजी की ऐतिहासिक भूमिका पर आधारित कहानियाँ इसके सशक्त प्रमाण हैं–**'सिकन्दर की शपथ'** और **'चित्तौर–उद्धार'** में भारतीय वीरांगना की कर्तव्यनिष्ठा, सामाजिक–सांस्कृतिक उत्तरदायित्व के निर्वाह में त्यागपूर्ण योगदान आदि राष्ट्रीय अस्मिता के गौरव सम है। सिकन्दर की शपथ में ग्रीक–सेना ने धोखे से स्वदेश लौटते हुए राजपूत सैनिकों को मारने का यत्न किया तब अपने–अपने पतियों के युद्ध कार्य में न केवल सहायता करती है अपितु स्वयं भी शस्त्र हाथ में धारण करके स्त्री–शक्ति का परिचय ग्रीक–सैनिकों को देती हुई वीरांगनाएँ मृत्यु को गले लगाती है। यह है भारतीय नारी का गौरवपूर्ण बलिदान जो भारत की अस्मिता को उन्नत बनाता है। प्रसाद जी ने पुरुष के समान ही नारी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए उनके सामाजिक–सांस्कृतिक महत्व को प्रमाणित किया है। इसी प्रकार **'चित्तौर–उद्धार'** कहानी में राजकुमार हम्मीर को उनके राजनीतिक कर्तव्य–पालन में न केवल सहायक होती है अपितु उनका मार्गदर्शक बनकर हम्मीर को अपना चित्तौर का पितृक सिंहासन दिलाने में साहस, बौद्धिक चातुर्थ एवं वीरांगना के योग्य कर्तव्यनिष्ठा के पालन में दृढ़–चरित्र की अधिकारिणी सिद्ध होती है।

इस प्रकार नारी–जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को अवगत कराते हुए प्रसादजी ने नारी को मानवीय धरातल पर पहुँचाने का सत्प्रयास किया है। नारियों की धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों में सुधार लाने का तथा उन्हें सम्माननीय स्थान देने का प्रयत्न 19वीं शताब्दी से प्रारम्भ हो गया था, किन्तु उसका पूर्ण विकास छायावाद युग में हुआ है। प्रसाद जी ने भारतीय नारी की स्वतंत्रता, उसके अधिकार, महत्ता तथा पुरुष की तुलना में उसकी श्रेष्ठता का समर्थन करते हुए अपने साहित्य में नारी–शक्ति का परिचय दिया है। अपने युग की नवीन समस्याओं का समाधान उन्होंने ऐतिहासिक काल के पात्रों के माध्यम से किया है तथा रूपकात्मक पात्रों के माध्यम से मानवीय मनोवृत्तियों का परिचय दिया है। प्रसादजी के हृदय में नारियों के प्रति विशेष सहानुभूति थी तथा उनके प्रति सम्माननीय दृष्टि रखते थे। इसीलिए उन्होंने अपने साहित्य में नारियों का सामाजिक, राष्ट्रीय एवं विश्व के प्रति योगदान को दर्शाते हुए उसकी उपयोगिता को सिद्ध किया है। इस प्रकार प्रसाद जी ने नारी–उत्थान के लिए उसके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय महात्म्य के निरूपण द्वारा उसे दैवीय एवं आदर्श रूप में चित्रित करते

जी.एफ. 7, सिल्वर कोइन,
मकरपुरा पुलिस स्टेशन के सामने
भवन्स सर्कल, मकरपुरा रोड
वडोदरा–390009 (गुजरात)

संदर्भ सूची :

1. प्रसाद : कामायानी, श्रद्धा सर्ग ।
2. प्रसाद जी की कला – पृ. 90
3. प्रसाद : ध्रुवस्वामिनी (नवां संस्करण) पृ. 27
4. वही, पृ. 25
5. वही, पृ. 62
6. प्रसाद : अजातशत्रु, पृ. 123, 124
7. वही, पृ. 124
8. डॉ. सूरजपाल शर्मा : संक्षिप्त प्रसाद सुधा सागर, पृ. 265
9. प्रसाद:जनमेघ का नागय (तृतीय संस्करण, सं. 2005), पृ. 64
10. प्रसाद : कामना (सप्तम् संस्करण, सं. 2019 वि.), पृ. 64
11. प्रसाद : देवरथ (इन्द्रजाल – कहानी संग्रह), पृ. 363
12. डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर : समग्र लोहिया, पृ. 161
13. डॉ. किरण बाला : समकालीन हिन्दी कहानी और समाजवादी चेतना, पृ. 164
14. प्रसाद : व्रत भंग (आंधी कहानी संग्रह), पृ. 175

डॉ. अम्बेडकर और भारतीय संविधान

डॉ. मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ

गत शताब्दी के तीस के दशक से कांग्रेस इस बात पर जोर देती आ रही थी कि भारत का संविधान भारत के लोग स्वयं बनाएंगे। सन् 1946 में जब वायसराय लॉर्ड बेवेल ने इसकी स्वीकृति दे दी तो एक संविधान–सभा का गठन दिसम्बर 1946 में किया गया। चर्चिल की यह आपत्ति थी कि कांग्रेस मात्र सवर्ण हिन्दुओं की संस्था है। अतः वह भारत की पूरी जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती, अतः इस संविधान–सभा को व्यापक और जन प्रतिनिधि बनाने के लिए, विविध क्षेत्रों के कुल मिलाकर इसके लगभग 300 सदस्य बनाए गए। इन सदस्यों में गैर कांग्रेसियों को पर्याप्त स्थान दिया गया। डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक ऐसे ही गैर कांग्रेसी सदस्य थे जो कांग्रेस के विरोधी और अछूतों के प्रतिनिधि समझे जाते थे। इन तीन सौ में से आठ सदस्य बहुत प्रमुख थे जिनमे जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, भीमराव अम्बेडकर, के.एम. मुंशी, कृष्ण स्वामी अय्यर और बी.एन. राय को गिना जाता है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद संविधान–सभा के अध्यक्ष और गांधीजी के कहने पर डॉ. अम्बेडकर को ड्रॉफ्टिंग कमेटी का अध्यक्ष बनाया गया था जो नेहरू, पटेल आदि की तरह ही कानून की डिग्री प्राप्त थे।

इस संविधान–सभा ने सभी फैसले बड़ी बहसों के बाद लिये परन्तु इसमें गांधीजी की इस बात को नकार दिया गया कि इकाई ग्राम पंचायत को बनाया जाय। ग्राम पंचायत के स्थान पर इकाई व्यक्ति को ही माना गया। संविधान को ऐसा रूप दिया गया जिसमें एक मजबूत केन्द्र के अंतर्गत विभिन्न राज्यों का संघ एकजुटतापूर्वक काम कर सके। जिम्मेदारियों की तीन सूचियाँ बनाई गईं। एक केन्द्र की जिम्मेदारियों की सूची थी और दूसरी राज्यों की जिम्मेदारियों की। तीसरी सूची, जिसे समवर्ती सूची कहा गया, वह उभयनिष्ठ जिम्मेदारियों की सूची थी। इस संविधान में धार्मिक आधार पर किसी भी प्रकार का आरक्षण अस्वीकार कर दिया गया। इसी प्रकार महिलाओं के लिए भी किसी प्रकार का आरक्षण स्वीकार नहीं किया गया। आदिवासियों के आधार पर आरक्षण स्वीकार कर लिया गया जिसके सबसे बड़े समर्थक और प्रवक्ता झारखण्ड के जयपाल थे। इस दृष्टि से भी जातियों की एक सूची बनाई गई। हिन्दी और देवनागरी को इस शर्त के साथ राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया गया कि 15 वर्ष तक अंग्रेजी का प्रयोग यथावत चलता रहेगा। ऐसे ही अनेक महत्वपूर्ण और दूरगामी प्रभाव के फैसले लेने के बाद दिसम्बर 1949 में इसको अन्तिम रूप दिया गया।

क्योंकि अम्बेडकर ड्रॉफ्टिंग कमेटी के अध्यक्ष थे अतः ग्यारह सत्रों की 165 दिन चली इस बहस में वे सर्वाधिक सजग श्रोता, ग्राहक और चिंतक थे। संविधान को साक्षात् शब्द रूप देना उन्हीं की जिम्मेदारी थी। 26 जनवरी 1949 को संविधान सभा अपना काम समाप्त करने जा रही थी। उससे एक दिन पूर्व 25 जनवरी को डॉ. अम्बेडकर ने अंतिम भाषण देकर अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह किया। यहां हम उनके इस अंतिम भाषण के विषय में ही कुछ कहना चाहते हैं।

सर्वप्रथम उन्होंने कांग्रेस पार्टी के अनुशासन को धन्यवाद दिया और कहा अत्यंत तीव्र मतभेदों के बीच भी ड्रॉफ्टिंग कमेटी कांग्रेस के शान्तिपूर्ण अनुशासन के कारण ही अपना काम पूर्ण कर पाई। इसके अनेक विषय मतभेदों से पूर्ण रहे हैं फिर भी किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सका, भले ही ये निर्णय भविष्य में कोई भी रूप लें। दूसरे उन्होंने उन समस्त लोगों की भावनाओं को सराहा जिनका मानना था कि भारत ही गणराज्य प्रणाली का जनक रहा है। भारत का इतिहास गणराज्यों के इतिहासों से भरा पड़ा है। विशेष रूप से बौद्ध धर्म के फैसलों की विधि का उन्होंने उल्लेख किया। क्योंकि केन्द्र को शक्तिशाली बने रहने के लिए संविधान में काफी बल दिया गया था। अतः उन्होंने तीसरी बात यह कही कि संविधान में विधायिका और कार्यपालिका की शक्तियों का बंटवारा कर दिया है और केन्द्र अपने आप ही इस सीमा रेखा को पार नहीं कर सकता है। तात्पर्य यह कि राज्यों को इतने अधिक

अधिकार प्राप्त हैं कि केन्द्र मनमानी नहीं कर सकता है। उनकी यह सभी बातें एक प्रकार से कृतज्ञता की अभिव्यक्ति और विनम्रता की द्योतक है। परन्तु अपने भाषण के अन्त में उन्होंने तीन महत्वपूर्ण चेतावनियां दीं जिन पर आज के परिप्रेक्ष्य में विचार करना महत्वपूर्ण है।

उनकी राय में संविधान की रचना कुछ ऐसी है कि अब रक्त–रंजित क्रान्ति के लिए कोई गंजाइश नहीं बची है। जनमत द्वारा कुछ भी परिवर्तन किया जा सकता है। परन्तु इसके साथ ही उनका यह विचार भी था कि सविनय अवज्ञा, असहयोग और सत्याग्रह के गांधीवादी तरीके भी समाप्त होने चाहिए क्योंकि ये अधिनायकवादी ब्रिटिश राज्य के विरोध के लिए तो ठीक थे परन्तु प्रजातांत्रिक गणराज्य में इनके लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए। उनकी राय में सत्याग्रह और इसी तरह के दूसरे उपाय अराजकता में व्याकरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जितनी जल्दी हम इन्हें त्याग दें उतना ही अच्छा होगा।

उनकी दूसरी चेतावनी तानाशाही के चंगुल से बचने की थी। उनका कहना था कि कोई व्यक्ति या संस्था कितनी ही करिश्माई और श्रेष्ठ क्यों न हो उसके समक्ष आत्म समर्पण नहीं करना चाहिए। उनकी दृष्टि में किसी धर्म में भक्ति की भूमिका आत्मा की मुक्ति के लिये हो सकती है परन्तु राजनीति में भक्ति या वीरपूजा पतन और तानाशाही की ओर ले जाती है।

उनकी तीसरी चेतावनी यह थी कि संविधान ने जिस समानता के सिद्धांत को स्थापित किया है वह केवल कागजों में ही सीमित न रह जाय। उनका मानना था कि केवल राजनैतिक लोकतंत्र ही पर्याप्त नहीं है, सामाजिक असमानता की समाप्ति व्यवहार रूप में सांस्कृतिक स्तर पर आवश्यक है। उन्होंने यहां तक कहा कि कब तक हम अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता से इन्कार करते रहेंगे? यदि हम लम्बे समय तक ऐसा करते रहे तो हम लोकतंत्र को खतरे में डालने का काम करेंगे।

जहां तक प्रथम चेतावनी का प्रश्न है उनका मन्तव्य यह था कि भविष्य में परिवर्तन के लिए प्रजातांत्रिक तरीके ही काम में लाने होंगे। शस्त्र और दुराग्रह का प्रयोग छोड़ना होगां सशस्त्र क्रान्ति से उनका मतलब सीधे–सीधे कम्युनिस्टों के हिंसापूर्ण तरीकों से था और सविनय अवज्ञा, सत्याग्रह और असहयोग की विधियों को छोड़ने से उनका तात्पर्य दुराग्रह और अनावश्यक दबाव से है। परिवर्तन के लिए वह एक साधुतापूर्ण ढंग से जनमत जागृत कर सत्ता परिवर्तन के पक्षधर थे न कि विधि और व्यवस्था को तहस–नहस कर अराजक विधियों का इस्तेमाल करके परन्तु समय की कसौटी पर उनकी दोनों ही बातें खरी उतरी। व्यवहार जगत में उनका पालन नहीं हो सका। जहां तक सक्रिय क्रान्ति का प्रश्न है कम्युनिष्ट विचारधारा से प्रेरित हिंसात्मक कार्यवाहियां जारी रहीं। इस पार्टी ने स्वतंत्र तेलंगाना का हिंसात्मक आन्दोलन छेड़ रखा था उसको बिना शर्त समाप्त करके यद्यपि वे 1952 के चुनाव के मैदान में आ भी गए परन्तु यह उनका सामयिक लाभ उठानेवाला एक निर्णय था, नीतिगत परिवर्तन नहीं था। भौतिक विचारधारा में कोई परिवर्तन नहीं आया। चुनाव में हिस्सा लेने के साथ–साथ दो लोग उत्तर और दक्षिण में सशस्त्र प्रयत्न करते रहे और आज भी उसके अनेक उदाहरण मौजूद है। देश ने काकुतम का खूनी विद्रोह, पीपुल्स वार ग्रुप में भयंकर हिंसा, ताण्डव, असम की उल्फा, कश्मीर की JLNF, पंजाब का खालिस्तान आन्दोलन, तमिलनाडु के लिट्टे, अनेक दृश्य देखें। हां, इतना अवश्य हुआ कि जनमानस में यह बात बैठ गई कि किसी सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा देश में न तो कम्युनिस्ट शासन लाया जा सकता है और न ही उसकी कोई आवश्यकता है। बंगाल में उनका 20–25 वर्ष का शासन प्रजातांत्रिक विधियों के ही चल पाया जनता ने जब अनावश्यक समझा उखाड़कर फैंक दिया। इनके सशस्त्र प्रयत्नों को जनता ने कभी आदर की दृष्टि से नहीं देखा। जहां तक सत्याग्रह अवज्ञा आन्दोलन और असहयोग की बात है उस पर भी रोक नहीं लग पाई। वे चालू रहे। आन्ध्रप्रदेश के निर्माण के लिए रामालु ने भूख हड़ताल कर अपने प्राण दे दिए। स्वयं विनोबा भावे ने हिन्दी के प्रश्न पर अनशन किया। मोरारजी देसाई भी इन्दिरा के काल में अनशन पर बैठे। विरोध–प्रदर्शन के वे सभी शस्त्र आज अपनाए जाते हैं जिन्हें अम्बेडकर ने गांधीवादी कहकर समाप्त करने का आग्रह किया

था। अम्बेडकर के मन्तव्य को इसी रूप में समझा जा सकता है कि वे विरोध–प्रदर्शन के लिए किसी भी प्रकार की अराजकता के विरोधी थे और इसे सिद्धांत रूप में भी स्वीकारा जा सकता है। सैद्धांतिक रूप से इसे स्वीकार भी कर लिया गया है परन्तु जब जनमत असक्त प्रचण्ड हो तो उसे रोकना कठिन होता है, इसके उदाहरण के रूप में इन्दिरा काल में हुए जयप्रकाश नारायण का आन्दोलन रखा जा सकता है।

जहां तक दूसरी चेतावनी का प्रश्न है कि कोई व्यक्ति कितना ही महान क्यों न हो उसके समक्ष आत्म समर्पण विनाशकारी होगा, यह जनतंत्र को तानाशाही से बचाने की सलाह है। यद्यपि बाद के इतिहास में पाकिस्तान और बांग्लादेश के उदाहरणों ने इसकी धज्जियां उड़ा दीं परन्तु अम्बेडकर का संकेत उस समय पण्डित नेहरू और कांग्रेस की ओर था। 1952 के चुनाव में जनता ने नेहरू और कांग्रेस के प्रति स्पष्टतः अपनी 'भक्ति' का प्रदर्शन किया। पण्डित नेहरू का स्वयं का व्यक्तित्व इतना प्रभावी सिद्ध हुआ कि स्वयं अम्बेडकर बम्बई से काजोलकर जैसे मामूली दूध के कारोबारी से पराजित हो गए। कांग्रेस को संसद में 489 में से 364 तथा विधानसभाओं में 3280 में से 2247 सीटों पर विजय मिली । इतनी भारी विजय के बाद भी जनतंत्र ने अपना काम किया । तानाशाही नहीं आयी । कांग्रेस के 28 मंत्री हारे, स्वयं मोरारजी देसाई को हार का मुंह देखना पड़ा। इसके बावजूद भी अम्बेडकर के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि कांग्रेस को आधे से भी कम वोट मिले। संसद में उसका प्रतिशत 45 था और विधानसभाओं में 42.4 आधे से अधिक जनमत विरोध में रहा। 1957 के चुनाव की कथा भी कुछ ऐसी ही रही।

इस विषय में सर्वाधिक संकट की घड़ी थी इन्दिरा आंधी और उनके द्वारा लगाया गया आपातकाल। व्यक्ति पूजा की सारी सीमाएं उस समय पार कर दी गई जब Indira is India, India is Indira का नारा लगाया गया। नेहरू जी एक लोकप्रिय नेता थे। उनकी पृष्ठभूमि में स्वतंत्रता की लड़ाई थी परन्तु इन्दिरा गांधी ने राजकीय शक्ति के कुशल और साहसिक प्रयोगों के माध्यम से अपना प्रभाव पैदा किया था। बैंकों का राष्ट्रीयकरण, प्रिवी पर्स को समाप्त करना आदि अनेक ऐसे काम थे जिनके माध्यम से उन्होंने अपने शक्तिशाली होने का प्रमाण दिया और लोकप्रियता अर्जित की। वी.वी. गिरि का चुनाव भी इसका एक प्रमाण था। प्रजातंत्रात्मक विरोध उनके विरुद्ध इतना व्यापक और तीव्र था कि लगता था कि टिक नहीं सकेंगी परन्तु यह व्यापक और तीव्र विरोध भी उन्हें जनतांत्रिक ढंग से हटा नहीं पाया । परन्तु न्यायालय के समक्ष पराजित होने पर उनका तानाशाही रूप सामने आया । लेकिन यह तानाशाही पाकिस्तान की तरह सैनिक तानाशाही नहीं थी। विरोध में जैसे भरी गईं और इन्दिराजी को बाध्य होकर चुनाव की घोषणा करनी पड़ी। ध्यान देने की बात यह है कि आपातकाल में भी उन्होंने स्वयं को तानाशाह घोषित नहीं किया था, वे प्रधानमंत्री ही बनी रहीं। आपातकाल के बाद उनकी पराजय और जनता पार्टी शासन के पतन के बाद इन्दिरा गांधी की पुनः विजय, इस सबके पीछे इन्दिराजी का व्यक्तित्व कितना ही अधिक प्रभावी क्यों न रहा हो जीत प्रजातंत्र की ही हुई। सत्ताइस साल संसद सदस्य रहने के बाद प्रधानमंत्री बने अटलबिहारी वाजपेयी की लोकप्रियता लोकतंत्र के प्रति उनके अटल विश्वास के कारण थी। जनतंत्र उनकी रग–रग में बसा था परन्तु जहां तक व्यक्तित्व का प्रश्न है उनमें एक तानाशाह बनने के लिए आवश्यक सभी गुण थे परन्तु उनके प्रति जनता का भाव समर्पण का न होकर स्नेह का था। उन्होंने विरोध को एक संवैधानिक रूप दिया। विरोधियों से उनके व्यक्तिगत सम्बन्ध जितने गहरे थे उतने किसी भी प्रधानमंत्री के नहीं रहे।

तात्पर्य यह कि अम्बेडकर जनतंत्र की उस शक्ति को भली प्रकार समझ पाये जो तानाशाही को दूर रखती है। ऐसा नहीं है कि एक तंत्रात्मक पद्धति का भारत में अस्तित्व ही न हो। वह है, और इतना गहरा है कि उसके समक्ष किया गया समर्थन बड़े–बड़े काम करा सकता है परन्तु उसका क्षेत्र राजनीति नहीं सास्कृतिक है। ब्रह्माकुमारी समाज, गायत्री परिवार और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ निश्चित ही एकतंत्रात्मक पद्धति में विश्वास करते रहे हैं क्योंकि इनके पास चमत्कारी व्यक्तित्व इनके केन्द्र में रहे हैं। परन्तु ऐसे किसी भी संगठन को भी केन्द्रीय मूलभूत चमत्कारी

व्यक्तित्व के समाप्त हो जाने पर, बाद में उस स्तर का कोई व्यक्तित्व न होने पर, प्रजातांत्रिक रूप ही ग्रहण करना पड़ता है। उपर्युक्त तीनों संगठन इसके उदाहरण हैं। यदि राजनीति की ही बात करनी हो तो हमने देखा है कि जिन्ना के बाद पाकिस्तान में कोई भी ऐसा व्यक्तित्व सामने नहीं आया जो उस देश को एक रख सकता। भारत का विरोध ही उसके अस्तित्व का आधार बन गया। राजनीति में भी व्यक्तित्व ही प्रभावशाली ढंग से काम करता है और यदि देश में प्रजातंत्र सुदृढ़ है तो उसे तानाशाह नहीं बनने देता । अम्बेडकर की यह चेतावनी आज भी कारगर ढंग से काम कर रही है।

जहाँ तक तीसरी चेतावनी का प्रश्न है कि यदि असमानता बनी रही तो हम लोकतंत्र को खतरे में डाल देंगे। जो कुछ उन्होंने कहा था 1949 की परिस्थिति में कहा था। उस समय की स्थिति और आज की स्थिति में पर्याप्त अन्तर है। जमींदारी और जागीरदारी प्रथा समाप्त होने पर भूमि पर आज मालिक वह है जो उसे जोतता है। आज वास्तविक किसान मालिक बना है। राजकीय स्तर के साथ–साथ सामाजिक प्रयास भी भूमि के समान रूप से बंटवारे में सहायक सिद्ध हुए है। लोकसभा, विधानसभा, न्यायपालिका, शिक्षा क्षेत्रों में प्रवेश और सरकारी नौकरियों में आरक्षण ने सामाजिक असमानता को दूर करने में पर्याप्त प्रभाव डाला है। जहाँ तक छुआछूत मिटाने का प्रश्न है, सैद्धांतिक रूप में इसे सभी ने स्वीकारा है, व्यवहार रूप में भी इसका दूरगामी प्रभाव पड़ा है। लोकतंत्र को खोने का भय तब होता है जब असमानता इतनी हो कि निम्नतम वर्ग के पास खोने के लिए कुछ भी न हो और वह निर्भय होकर हथियार उठा ले। आज स्थिति ऐसी नहीं है। प्रत्येक के पास खोने के लिए बहुत कुछ है। साथ ही यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि समानता की यह स्थिति न तो कभी आयी है और न आएगी जब आर्थिक दृष्टि से सभी बराबर हो जाय। बराबरी अवसरों की होती है और होनी चाहिए, आज अवसरों की यह बराबरी है। परन्तु अम्बेडकर का संकेत जिस असमानता की ओर था वह सामाजिक स्तर की समानता भी है। शहरी क्षेत्र में बढ़ते औद्योगीकरण और वैज्ञानिक उपकरणों तथा वैज्ञानिक दृष्टि के उत्पन्न होने के कारण यह असमानता बहुत कुछ समाप्त है। सवर्ण और अवर्ण के अन्दर कोई अन्तर नहीं दिखाई देता है। जहां तक आरक्षण का प्रश्न है उससे सामाजिक स्तर की समानता भी बहुत कुछ सामने आयी है परन्तु आरक्षण के राजनीतिकरण और वोट की ललक ने अनेक नए प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न कर दी है। हमें ऐसी स्थिति की कल्पना करनी चाहिए जब अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन जातियों की ओर से ही आरक्षण समाप्त करने की मांग उठे। यह तभी संभव है जब जातियाँ समाप्त कर दी जाएं।

जहाँ तक ग्रामीण क्षेत्र का प्रश्न है, मानसिकताओं में तो परिवर्तन आया है परन्तु व्यवहार के क्षेत्र में वह स्थिति नहीं है जो शहरों में है। दूरी और असमानता का व्यवहार आज भी बना हुआ है। जिस लोकतंत्र के माध्यम से हम असमानता दूर करना चाहते हैं, उसी लोकतंत्र की वोटवादी राजनीति जातिवाद को बढ़ावा दे रही है। जातीय गुटबाजी आज भी उसी प्रकार की है जैसे पहले थी। परन्तु केवल राजनीति को ही इसके लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। हमारे पाँच हजार वर्ष पुराने संस्कार यकायक 60–70 साल में नहीं बदल सकते, इस क्षेत्र में जितना कुछ हुआ है, उससे बहुत कुछ अधिक होना शेष है।

विरोध प्रदर्शन की विधियों में बदलाव, तानाशाही के प्रति सावधानी और असमानता की समाप्ति, इन तीनों ही बिन्दुओं को प्रस्तु करते समय अम्बेडकर की दृष्टि राष्ट्रीय एकता पर थी। राष्ट्रीय एकता साध्य है और लोकतंत्र साधन है, यह उनके समक्ष स्पष्ट था। निश्चित ही राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिए यदि हमारे समक्ष लोकतंत्र से श्रेष्ठकर विकल्प आयेगा, यदि लोकतंत्र की वर्तमान पद्धति में कोई बड़ा परिवर्तन लाना आवश्यक होगा तो हमारा प्रयास उस बदलाव को लाने का होगा, जिसमें राष्ट्रीय एकता बनी रहे। जिस लोकतंत्र में 60 प्रतिशत विरोध में मत पड़ने पर भी 40 प्रतिशत वोट के आधार पर सरकार बनाई जा सकती है, उसके विकल्प को ढूंढ़ना आवश्यक है।

75/70, मानसरोवर, जयपुर–302020
मोबा. 8764295011

बुद्धं सरणं गच्छामि

डॉ. बुद्ध शरण हंस, (Retd. I.A.S.)

सिद्धार्थ गौतम का जन्म ईसा से 563 वर्ष पूर्व हुआ था। सिद्धार्थ गौतम के पिता सिद्धार्थ गौतम के जन्म के समय कपिलवस्तु गणराज के राजा नियुक्त थे। कपिलवस्तु राज के पास रोहिणी नदी के जल बंटवारा को लेकर कपिलवस्तु का पड़ोसी राज कोलिय और कपिलवस्तु के शाक्यों के बीच काफी तनाव व्याप्त था। कपिलवस्तु का सेनापति जल बंटवारा को लेकर कोलियों पर आक्रमण कर समस्या को निपटाने के लिए उद्धत था। इसी समय बीस वर्ष की आयु पूरा होने पर सिद्धार्थ गौतम कपिलवस्तु के संघ में विधिवत शामिल हुए थे। सिद्धार्थ गौतम शांत और उदान्त विचार के राज कुमार थे। उन्होंने सेनापति के द्वारा कोलियों पर आक्रमण करने की योजना का नम्रतापूर्वक विरोध करते हुए प्रस्ताव दिया कि पर शांति वार्ता से ही रोहिणी नदी के जल बटवारे का समाधान समीचीन होगा। सेनापति के साथ–साथ कपिलवस्तु के सारे संध सदस्य सेनापति का साथ दे रहे थे। मगर अकेला सिद्धार्थ गौतम विनम्रतापूर्वक अपनी शांति–समझौता की बात पर अडिग रहे। सिद्धार्थ गौतम का यह निश्चय देशद्रोह माना गया। फलतः उन्हें देश निकाला की सजा दी गयी।

गया नगर के पास उरूबेला में ज्ञान की प्राप्ति–सिद्धार्थ गौतम कपिलवस्तु से निष्कासित होकर मगध राज की ओर चलते हुए राजगृह आ गये। राजगृह में तपस्या कर रहे कई तपस्वियों के साथ उन्होंने इंसान के दुखों के निदान का रास्ता ढूंढा, मगर वे उन तपस्वियों के हठयोग से संतुष्ट नहीं हुए। राजगृह से सिद्धार्थ गौतम घूमते–घूमते गया के निरंजना नदी के पास उरूवेला वन में चले गये। यहां उन्हें पांच तपस्वी साधनारत मिल गये। उन्हें आभास हुआ कि संभव है, ये तपस्वी ज्ञानवान हों और इंसान के दुखों के कारणों और उसके निवारण का रास्ता बतला सकें। मगर वे पांचों तपस्वी कोरे कागज थे। वे शरीर को नाना प्रकार के कष्ट देकर ज्ञान प्राप्त करने का दिवा स्वप्न देख रहे थे। सिद्धार्थ गौतम ने भी भूखा–प्यासा रहकर शरीर को सुखाकर कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त करने की ठानी। भूखे–प्यासे उनका शरीर सूखकर कांटा हो गया। वे मरनासन्न हो गये। इसी समय अपनी सखियों के साथ सुजाता नाम की कन्या पीपल देवता को खीर चढ़ाने आ गयी। उसने देखा कि पीपल गाछ के पास तो मरनासन्न वृद्ध बैठे हैं। सुजाता ने अनुनय–विनय करके मरनासन्न सिद्धार्थ को खीर खिला दी। सिद्धार्थ गौतम में मना करने की शक्ति भी नहीं थी। खीर खाते ही सिद्धार्थ गौतम को शक्ति आ गयी। तब उन्होंने सोचा कि जब जान ही नहीं रहेगी, तब ज्ञान कहां से आ पायेगा। सिद्धार्थ गौतम की सोंच बदल गयीं। उन्होंने सदाचार को इंसान के बीच बतलाकर इंसान को सुखी होने का निश्चय कर लिया। सिद्धार्थ गौतम को यहीं सामाजिक ज्ञान की प्राप्ति हो गयी। तभी सिद्धार्थ गौतम बुद्ध हो गये। उरूवेला के पांच सन्यासियों ने सिद्धार्थ को खीर खाने से इस कारण रूष्ट होकर वहां से चल दिये कि सिद्धार्थ गौतम पथ भ्रष्ट हो गये। अब इनमें किसी तरह का योग बल नहीं रहा।

बुद्धगया महाविहार की पृष्ठभूमि–जहां सिद्धार्थ गौतम बुद्ध को पीपल गाछ के पास ज्ञान की प्राप्ति हुई, वहां पीपल, बेर, आम, कटहल, आदि के वन थे। पास में उरूवेला गांव था। सम्राट अशोक की दादी हेलेन निकोटर राजकुमार अशोक को बहुत गंभीरता से बुद्ध कथा सुनाया करती थी। राजकुमार अशोक की दादी हेलन निकोटर यूनान के सम्राट सिंकदर के सेनापति सेल्यूकस की इकलौती बेटी थी। यूनान आज के विहार राज्य से 8000 कि.मी. की दूरी पर स्थित ख्यातनाम देश है। गौतम बुद्ध की अद्वितीय ख्याति से प्रभावित होकर ही सेनापति सेल्यूकस बिना किसी सेना के अपना परिवार पत्नी और पुत्री तथा अन्य आवश्यक सहयोगी दल को लेकर हिन्द महासागर को पार कर मगध आ पहुंचे थे। कितना साहसिक कदम उठाया था

सेनापति सेल्यूकस ने बुद्धभूमि को देखने के लिए? बुद्धभूमि को देखकर सेल्यकूस का पूरा परिवार इतना मुग्ध हुआ कि मगध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ अपनी पन्द्रह वर्षीय अबोध बालिका हेलेन का निर्भय होकर विवाह कर दिया। यही बालिका हेलेन निकोटर चन्द्रगुप्त की महारानी हुई और राजकुमार अशोक की दादी हुई। अपनी दादी हेलेन निकोटर से राजकुमार अशोक को बहुत लगाव था। राजकुमार अशोक को बुद्धमय बनाने में उनकी दादी हेलेन निकोटर का सर्वांशतरू योगदान रहा।

राजकुमार अशोक का मगध के सिंहासन पर राज्याभिषेक 270 ई.पू. में हुआ था। सम्राट अशोक विद्या विस्तार में विश्वविख्यात व्यक्ति हुए। उन्होंने अपने जीवनकाल में 101 विश्वविद्यालयों और 84 हजार विहारों का निर्माण कराया था। इन विहारों में शिक्षालय का ही काम होता था। बुद्ध विहार शिक्षा विस्तार का केन्द्र हुआ करता था। बौद्ध संगिति बौद्ध धर्म के प्रसार–प्रचार के लिए हुआ करती थी। सम्राट अशोक ने तीसरी बौद्ध संगिति पाटलीपुत्र में 250 ई.पू. में करायी थी। इसी तीसरी बौद्ध संगिति की याद में सम्राट अशोक ने बुद्धगया में बुद्ध महाविहार का निर्माण 250 ई. पू. में कराया था।

लुम्बिनी की यात्रा– बुद्धगया महाविहार निर्माण के पहले 250 ई.पू. में सम्राट अशोक ने बुद्ध की जन्मस्थली तुम्बिनी की धर्म यात्रा की थी। अपने साथ हजारों लाव–लश्कर, भिक्षु–भिक्षुणियों उपासक, उपासिका को लेकर सम्राट अशोक लुम्बिनी गये। बुद्ध महान की जन्मस्थली पर सम्राट अशोक घंटों पूजा अर्चना करते रहे। जन्मस्थल के गाछ वृक्षों की अशोक ने भाव विहवल होकर ऐसे परिक्रमा की, जैसे कोई अबोध शिशु अपने माता–पिता के पांव पकड़कर लड़खड़ाते हुए परिक्रमा करता हो। उन्हें लुम्बिनी के चप्पे–चप्पे पर बुद्ध ही बुद्ध नजर आये। बौद्ध भिक्षुओं ने घंटों बुद्ध गान किया, बुद्ध गाथा कही। वहां से कई स्वर्ण कलश में बुद्ध जन्म भूमि की पवित्र मिट्टी को भरकर सम्राट अशोक गया के निरंजना नदी के उरूवेला गांव में उस पीपल गाछ के पास ले आये, जहां बुद्ध महान ने अमर ज्ञान की प्राप्ति की थी। बुद्ध की ज्ञान स्थली को विश्व का धरोहर बनाना था। अशोक महान ने अपने पराक्रम से बौद्धगया महाविहार का अनमोल निर्माण करा दिया।

बुद्धगया महाविहार की निर्माण कला– बुद्धगया महाविहार की ईंट किसी मजदूर से नहीं बनवायी गयी। ईट बनावाने के लिए खास सांचे का निर्माण कराया गया, जिसकी तह में बुद्ध चित्र को उकेरा गया। ईट के उपरी सतह पर पीपल के पत्ता का चित्र उकेरने के लिए पीपल के चित्र का लकड़ी के थपकन बनवाये गये। इस प्रकार बुद्ध विहार के निर्माण में लगे हर ईंट की तह पर बुद्ध चित्र तथा उपर में पीपल के पत्ता का चित्र उकेरा हुआ है। सम्राट अशोक ने स्वयं अपने हाथों से कई ईंटों को पारा और हर्षित हुए। बुद्ध महा विहार में लगे लाखों ईंटों को बौद्ध भिक्षुओं ने पारा।

ईंट पारने के लिए बौद्ध भिक्षु बनने की आपाधापी होती रही। बुद्ध महाविहार में लगी लाखों ईंटों को बौद्ध भिक्षुओं ने ही पारा और बैलगाड़ी से ढो–ढोकर लाया। ईंट की पराई स्थल पर रात दिन भोजनालय चला करता। राज की ओर से सभी सहायकों को भोजन नाश्ता स्वयं से करने की छूट थी। आनन्द का उत्सव था। जहां सम्राट अशोक स्वयं जब तब ईंट पारकर अपने आप को धर्म कार्य में लगाये हों, वहां बौद्ध भिक्षु और उपासक को काम करना तो अहोभाग्य बनता रहा।

बुद्धगया में महाविहार बनते समय तक सम्राट अशोक की दादी हेलेन निकोटर जीवित थीं। वे स्वयं बौद्ध महाविहार के निर्माण में अपनी धम्म सेवा दे रही थी। बुद्ध गया महाविहार में इसी कारण भारतीय स्थापत्य कला के साथ–साथ यूनान स्थापत्य कला की साफ झलक दीखती है। महाविहार का कंगूरा का शीर्ष लम्ब यूनानी मंदिर की आकृति है। यूनान के पूजा स्थलों के उपरी कंगूरे इसी लम्ब आकृति के बनाये मिलते हैं।

बुद्ध का पंचशील–गौतम बुद्ध के द्वारा दी गयी शिक्षा पंचशील विश्व मानव के सुख–शांति का समुद्र है। जैसे समुद्र का जल अथाह, वैसे ही बुद्ध का बताया

गया पंचशील इनसान के सुख शान्ति का अथाह सागर है। बुद्ध के द्वारा बताया गया पंचशील सुनने और अध्ययन करने में सहज है। पंचशील यानी–1किसी की हत्या नहीं करना, मारपीट नहीं करना। 2–चोरी नहीं करना। 3–व्यभिचार नहीं करना। 4– झूठ नहीं बोलना 5– किसी तरह का नशा नहीं करना। कितना सहज, कितना आसान सुनने में लगता है यह पंचशील? मगर इस पंचशील को शत–प्रतिशत पालन करना सागर पी जाने जैसा, हिमालय को तलहथी पर उठाने जैसा कठिन है।

पंचशील इंसान के सुख का रास्ता है, सम्मान का रास्ता है। जहां पंचशील वहां किसी तरह का दुख नहीं। जहां पंचशील नहीं वहां इंसान दुख के दरिया में डूबा हुआ है। यही बुद्ध देशना की विशेषता है। यह पंचशील विश्व प्राणी के लिए जरूरी भी है और हितकर भी है। पंचशील ही आज की विधि व्यवस्था है। पंचशील पालन कराने के लिए ही दुनिया भर की सरकारें हैं, पुलिस हैं, सेना हैं, जज और जेल हैं। अगर संसार के इंसान पंचशील का शत–प्रतिशत पालन करने लगे, तब न जज की जरूरत रहेगी, न जेल की, न पुलिस की, न सेना की। बुद्ध की इसी सदाचार की शिक्षा के कारण बुद्ध विश्व के निर्विवाद उपदेशक हैं और रहेंगे।

भारत सहित विश्व में आज जो भी मारकाट, अपराध, लूट, घपले–घोटाले, बलात्कार हो रहे हैं, सब की जड़ में बुद्ध की शिक्षा पंचशील को नहीं मानने के कारण हो रहे हैं। अपने अंह में अपने लोभ और लालच में हर इंसान कल की चिंता में आज ही मरा जा रहा है या मारा जा रहा है। बुद्ध का अमर संदेश सुख और शांति से जीने का है।

बुद्ध का संदेश इंसान के लिए– बुद्ध ने अपने उपदेश का आधार न किसी ईश्वर को बनाया, न आत्मा को, न परमात्मा को। बुद्ध हर इंसान की तरह ही साधारण इंसान थे। उनमें किसी तरह की न अलौकिक शक्ति थी, न उनमें कोई चमत्कार था। वे आम इंसान की तरह ही अपने माता–पिता से पैदा हुए जीवन जीये और अस्सी वर्ष की उम्र में काल कवलित हो गये। बुद्ध सहज इंसान थे। वे किसी तरह के अवतार नहीं थे।

मगर बुद्ध का पंचशील मानना इंसान के लिए भारी पड़ रहा है। अपने शत्रु की हत्या करके या करा के इंसान आनन्दित होता है। किसी का सामान चुराकर इंसान आनन्दित होता है। किसी की बहन बेटी को फुसलर या जबरदस्ती उसकी ईज्जत लूटकर इंसान आनन्दित हो रहा है। किसी को धोखा देकर इंसान आनन्दित हो रहा है। शराब, सिगरेट पीकर इंसान आनन्दित हो रहा है। इस तरह का झूठा आनन्द ही इसांन के सारे दुखों का कारण बन रहा है। इंसान ने अपने जीने की उल्टी गिनती सीख ली है।

किसी भी जेल में बंद कैदियों की हकीकत जानने का प्रयाश करें। यह जानकर भारी आश्चर्य होता है, कि किसी भी जेलों में बंद कैदी पंचशील में से किसी न किसी एक या दो शील यानी सदाचार को भंग करने के कारण ही अपराधी घोषित हुआ है और जेल में बंद है। कोई किसी के साथ मारपीट करने के कारण जेल में बंद है। कोई किसी का सामान चुराने के जुर्म में जेल में बंद है। कोई किसी की बहन बेटी की आबरू लूटने के कारण जेल में बंद है। कोई जाल फरेब करने झूठ बोलने के कारण जेल में बंद है। कोई नशाखोरी करके हुड़दंग करने के कारण जेल में बंद है। सारे संसार में ये ही पांच अपराध हैं। पांच शील मानना अपराध रहित जीवन। पांच में से एक शील यानी सदाचार का उल्लंघन करना अपराधी जीवन। पंचशील भंग करना जैसे भारत में अपराध है, वैसे ही पाकिस्तान में भी, वैसे ही अमेरिका में भी, वैसे ही रोम में भी। क्या आश्चर्य की बात है?बुद्ध के द्वारा पंचशील की दी गयी शिक्षा भारत में और इसका पालन नहीं करना अपराध बन गया पूरे विश्व में। पंचशील पालन से ज्यादा महत्वपूर्ण विश्व में और कुछ भी नहीं।

डॉ. आम्बेडकर मिशन
चित कोहरा, पो. अनीसाबाद,
पटना–800002 (बिहार)

सन्त कबीर साहब की वाणी

आर.सी. विवेक

पन्द्रहवीं शताब्दी में जिस समय कबीर साहब का आविर्भाव हुआ था, उस समय भारतीय समाज टूटने और बिखरने की स्थिति में था. । समाज में भीषण तंबाही थी। धार्मिक पाखण्ड और कर्म काण्ड, सामाजिक विषमता तथा धार्मिक कुरीतियाँ, सांस्कृतिक उथल–पुथल, राजनैतिक लूट–पाट से जनता परेशान थी । इसी अन्धकार के युग में कबीर साहब प्रकाश की किरण लेकर आये थे। इसी परिवेश ने कबीर साहब को युग–पुरूष बना दिया । कबीर साहब की वाणी और उनके आदर्श समाज के लिए ऐसी जलती हुई मशाल है जो कभी न बुझने वाले ध्रुव तारे की तरह अटल – रहेगी। मानव जाति के लिए छेड़े गये कबीर साहब के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आन्दोलन तथा आध्यात्मिक चिन्तन, विश्व–मानव के लिए सोपान बनकर हिमालय की तरह खड़े रहेगें । कबीर साहब का जीवन–दर्शन और उनके सिद्धान्त हमारे लिए उपयोगी ही नहीं बल्कि जीवन के मार्ग की मंजिल भी हैं।

कबीर साहब की वाणी का यह उद्घोष इसका साक्षात् उदाहरण है कि सांई के सब जीव हैं और सबकी मांगे खैर तथा दुनिया के लोगों के लिए जागते रहना और उनकी पीड़ा देख कर रोना यह साधारण आदमी का काम नहीं है। अगर जगत में सन्त नहीं होते तो यह दुनिया कब की जल कर राख हो जाती । सन्त मुक्ति के दाता तथा सत्य मार्ग के पथ–प्रदर्शक होते हैं। इनकी कथनी और करनी में कभी अन्तर नहीं होता है। पारस धातु में एक ऐसा गुण होता है कि वह लोहे को सोना बना देता है, लेकिन सन्त में ऐसा गुण होता है कि वो सबको अपने ही जैसा बना लेता है।

कबीर साहब ने अपने समय में धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन चलाया था । इस आन्दोलन का यह परिणाम हुआ कि देश में एकता, समता और मानवता का वातावरण तैयार हुआ । समाज में समभाव, सर्वधर्म–सद्भाव और भाईचारा की स्थिति बनी। सामाजिक कुरीतियों और विषमताओं तथा धार्मिक पाखण्डों के खिलाफ आवाज उठाने के आम लोगों में साहस पैदा हुआ । कबीर साहब ने हिन्दुओं पर कटाक्ष करते हुए कहा कि **''पत्थर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजू पहाड़,'' ''ताते वोचाकी भली, पीस खाय संसार।।''** मुल्लाओं के ऊपर भी कटाक्ष करते हुए कहा था कांकर–पाथर जोड़कर मस्जिद ली चुनाय, ता चढ़ी मुल्ला बाँग दे, क्या बैरा हुआ खुदाय'।

हम लोक और वेद की रीति से संसार में चल रहे थे। ये दोनों ही मुक्ति के मार्ग नहीं है। ये दोनों ही अन्धकार के रास्ते हैं। जीवन में अन्धकार होगा तो मार्ग नहीं दिखेगा । मार्ग नहीं दिखेगा तो मंजिल तक पहुँचने में दिक्कत होगी । दिशाहीन होकर अन्धकार में चल रहे थे। हमारा सौभाग्य था कि रास्ते में ही चलते–चलते गुरू मिल गये और हाथ में दीपक थमा दिया । अन्धकार मिट गया और राह मिल गयी । मनुष्य के अन्दर काम, क्रोध, लोभ, मोह और अंहकार की ज्वाला होती है तथा हर पल आग की तरह जलती तृष्णा होती है जो विष से भी अधिक विषैली होती है तथा हर क्षण मनुष्य के अन्दर आग की तरह दहकते रहते हैं। इस दहकती जलती आग का एक मात्र निदान हैं सन्तों की वाणी ।

कबीर साहब कहते हैं, ''सबकी उत्पत्ति धरतीं सब जीवन प्रतिपाल।

धरती न जानै आप गुण, ऐसा गुरू विचार''

हम सबकी उत्पत्ति का मूल कारण है धरती । हम सबका प्रतिपालन भी धरती ही करती है। फिर भी धरती अपना गुण.कभी नहीं जानती । वृक्ष स्वयं अपना फल नहीं खात, वह दूसरों के लिए होता है। नदी भी

अपने आप पानी नहीं पीती है। सन्त पृथ्वी, नदी तथा वृक्ष की तरह होने की सीख देते हैं।

'कबीर खड़ा बाजार में चाहे सबकी खैर!
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर ।।

कबीर साहब मन की पवित्रता को सबसे ऊंचा मान थे, और वो कहते थे :

कबीर मनः निर्मल भया, जैसे गंगा नीर,
पीछे–पीछे हरि फिरे, कहत कबीर कबीर ।।

कबीर साहब की जमात में ज्यादातर लोग गरीब, मजदूर, किसान और अशिक्षित थे । इन लोगों ने कबीर साहब से . सवाल किया कि हम लोग पढ़े–लिखे नहीं है । हम लोग शास्त्र की सूक्तियां नहीं समझते हैं। हम लोग देखते हैं और मानते हैं कि ईश्वर का मूर्ति रूप मंदिर है। हम लोग मंदिर में पूजा कर नहीं सकते हैं और पूजा करने का अधिकार भी नहीं है। तब कबीर साहब ने सत्संग की पाठशाला शुरू की । कबीर साहब ईश्वरवादी सन्त थे । उनका ईश्वर आत्मा है

और आत्मा निर्गुण निराकार और निरंजन है। यह आत्मतत्व सब घट में विराजमान है और कण–कण में समाया हुआ है। इसी आत्मतत्व को कबीर साहब राम कहते हैं। कबीर साहब का राम राजा रामचन्द्र नहीं था । जो राजा था, आत्मतत्व दर्शन है, उसका भजन या सुमिरन नहीं होता है । उस आत्मतत्व की अनुभूति की जा सकती है। आत्म दर्शन होने की वजह से भजने या जपने की चीज नहीं है। इसलिए कबीर साहब ने इस आत्मतत्व को राम नाम कहकर पुकारा है जो आत्मतत्व हैं। राम आत्मा का नाम है और आत्मा अनादि है और जो अनादि है वह ईश्वर तत्व है। ईश्वर का किसी काल और परिस्थिति में नाश नहीं होता। कबीर साहब का ईश्वर आत्मा है, आत्मा अजर, अमर अविनाशकारी, असीम, अगोचर और रूप रेखा से परे है।, यह राम का सुमिरन ही आत्मानुभूति अमरता का महासुखसागर है।

सततत्व = आत्म तत्व=ईश्वर=प्राण=राम ।

आदमी के अन्दर जब तक भ्रम रहता है तब तक तमाम तरह की पाखण्डी–पूजा पाठ में उलझा रहता है। इसीलिए... भीतर से भ्रम का दूर होना आवश्यक है। ब्राह्मण का भ्रम है कि ब्राह्मपा कहता है कि मैं शुद्र से ऊँचा हूं। कबीर. साहब कहते है कि सृष्टि करने वालों ने ब्राह्मण और शुद्र का निर्माण किया होता तो सबके लिए. पैदा होने का रास्ता. अलग–अलग बनाया होता । जिस रास्ते में शुद्र पैदा होता है, ब्राह्मण भी उसी मार्ग से पैदा होता है। ऐसा. भी नहीं कि शुद्र... के देह में खून होता है और ब्राह्मण के शरीर में दूध। सबके शरीर में वही हड्डी, वही सांस वहीं रक्त मज्जा और वहीं मल–मूत्र है तो ब्राह्मण और शुद्र में किस बात के लिए भेद हैं। ब्राह्मण और शुद्र एक ही ईश्वर की संतान है।

आदमी आदमी आदमी को छोटा देखने वाली और अलग बंटवाने वाली धर्म व्यवस्था और समाज व्यवस्थाओं के खिलाफ सही और सार्थक लडाई की शुरूआत कबीर साहब ने की थी । कबीर साहब ने सबसे पहले जन मुक्ति का शंखनाद किया और उन्होंने निर्भीकता का संदेश दिया ! निर्भीक आदमी ने दुनिया में अपनी पताका फहरा सकता है। .. . . जागोगे तभी. अधिकार और संसार में जीने का रास्ता मिलेगा । ... कृ

विवेक विचार करे नहीं कोई, खलक तमाशा देखे सब कोई . . . . . .

धर्म न हिन्दू, मुस्लिम, धर्म न सिक्ख जैन ।.
धर्म चित की शुद्धता, धर्म सुख चैन।।

ई–3/29, सैक्टर–16, रोहिणी, दिल्ली–89
मोबा. 9891342732

आपकी पाती हमारी थाती

प्रति,

डॉ. तारा परमार जी
संपादक "आश्वस्त''
9–बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर,
उज्जैन–456 010 (म.प्र.)

महोदया,

जय साहित्य !

कैसे हैं आप? आशा है, प्रसन्न एवं स्वस्थ हैं।

"आश्वस्त'' के दो अंक प्राप्त हुए, धन्यवाद। दिसम्बर 2019 अंक की संपादकीय में डॉ. तारा परमार ने क्या खूब लिखा है–दो हाथ एवं दो पैर वाला आकार होने मात्र से ही कोई मानव नहीं हो जाता, बिल्कुल सही बात है। संपादकीय में मानवता व मानव अधिकारों के विषय को लेकर भी बात की गई है। अच्छी संपादकीय के लिए आपको नमन! इसी अंक में सीताराम पाण्डेय ने डॉ. भीमराव आम्बेडकर के बारे में अच्छी जानकारी प्रदान की है, अपने इस लेख से उन्होंने पाठकों को डॉ. भीमराव आम्बेडकर के बहुआयामी व्यक्तित्व को समझने का मौका दिया है, लेख बढ़िया है। डॉ. आम्बेडकर पर बी. एल. परमार का लेख भी विशेष रूप से प्रभावित करता है। पचपन कवियों की कविताओं के संग्रह की समीक्षा शेखर ने की है, समीक्षा स्टीक है, बधाई। डॉ. मधुर नज्मी का लेख भी बहुत बढ़िया है। उन्होंने अपने लेख में समीक्षा व आलोचना के बारे में बात तो की ही है, साथ ही आज के यथार्थ के बारे में बहुत ही तल्ख अंदाज में टिप्पणी भी की है जो हम सबको सोचने के लिए मजबूर करती है। इसी अंक में गुरुप्रसाद मदन, नवल जायसवाल, शेखर, डॉ. सुरेश उजाला, जयप्रकाश वाल्मीकि, डॉ. सुभाष नारायण भालेराव, देवेन्द्र कुमार मिश्रा, डॉ. धीरजभाई वणकर, किशनलाल शर्मा, रामचरण यादव, पारस कुंज और जितेन्द्र सुकुमार की बेहतरीन काव्य रचनाएं हैं। डॉ. बी.एल.आर्य ने कुछ लेखकों के विचार पाठकों के साथ बांटते हुए 'मदाकिन' कहानी पर फोक्स किया है। यह लेख इस कहानी के प्रति दिलचस्पी भी जगाता है।

अब जनवरी 2020 अंक की ओर आते हैं। इस अंक में आपकी संपादकीय पढ़कर मन को बड़ा ही सन्तोष हुआ। आपकी संपादकीय हमारे संविधान व बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर पर केंद्रित है। यथार्थ यही है कि जो देश अपनी स्वतंत्रता खो बैठता है, आजादी के पश्चात वह फिर दूसरी बार भी अपनी स्वतंत्रता खो सकता है। यह संपादकीय पाठकों का ध्यान अपनी ओर खींचती है। इसी अंक में डॉ. कुलदीप कौर ने जयशंकर प्रसाद की कहानियों की समीक्षा करते हुए उनकी कहानियों पर अच्छा प्रकाश डाला है। साथ ही शेखर ने कविता संग्रह "सुलगता हुआ शहर'' की कुछ कविताओं पर विभिन्न कोणों से देखते हुए अपने विचार व्यक्त किए हैं। हिन्दी गजल से संबंधित डॉ. मधुर नज्मी का लेख भी काफी प्रभावित करता है। मेरा ख्याल है कि आज हिन्दी में गजल लेखकों की संख्या सैंकड़ों में नहीं रही, अब तो यह संख्या और आगे जा रही है। खैर ! उक्त अंक की तरह इस अंक की काव्य रचनाएं भी स्तरीय व पठनीय हैं। इस अंक में राजपाल सिंह राजा, डॉ. तारिक असलम, देवेन्द्र कुमार मिश्रा, बी.एल.परमार, डॉ. लक्ष्मी निधि, जगदीश तिवारी, सरदार पंछी और रमेश मनोहरा की काव्य रचनाओं को प्रकाशित किया गया है। साथ ही मधु हातेकर, महिपाल भूरिया, डॉ. धीरजभाई वणकर, प्रबोध कुमार गोविल की लघुकथाओं और जयप्रकाश वाल्मीकि व शान्ति अग्रवाल की कहानी को भी प्रकाशित किया गया है। सभी रचनाकारों को अच्छी रचनाओं के लिए मुबारकबाद। इसी अंक में जवाहरलाल (सोनीपती) जी के विचार भी पढ़ने को मिले। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन की कुछेक घटनाओं को पाठकों के समक्ष

अच्छे से प्रस्तुत किया है व साथ ही उन्होंने जो पांच संकल्प लिए हैं एवं उसके बारे में बताया है, यह उनका अनुभव सभी को सीख देने वाला है, बधाई। गौरतलब है कि दोनों ही अंकों का मुख पृष्ठ सुन्दर और आकर्षक है और उक्त दोनों ही अंक पठनीय व संग्रहनीय भी हैं।

चलते–चलते मैं आपको बताना चाहूंगा कि "आलराऊंड अकादमी'' द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिका "आलराऊँड समीक्षा'' में पुस्तकों, पत्रिकाओं व समाचार पत्रों की समीक्षा पूरे विस्तार के साथ प्रकाशित की जाती है। अभी तो हम आपको उक्त दो अंकों की संक्षिप्त समीक्षा ही भेज रहे हैं, लेकिन हमारी पत्रिका "आलराऊंड समीक्षा" में "आश्वस्त'' के प्राप्त होने वाले सभी अंकों की विस्तारपूर्वक समीक्षा प्रकाशित की जाएगी, सो निवेदन है कि आप "आश्वस्त'' पत्रिका नियमित रूप से हमें भेजते रहें। आपका धन्यवाद ।

यदि आप चाहें तो हमारे पुस्तकालय के लिए कुछेक पुराने अंक भी भेज सकते हैं, धन्यवाद।

उक्त दोनों अंकों का अध्ययन करने के बाद मैं यह कह सकता हूं कि आपने बतौर संपादक, अपने संपादकीय विवेक का बेहद वाजिब और संतुलित उपयोग किया है। मैं आपकी इस कार्य–भावना की हृदय से सराहना करता हूं। आपका परिश्रम, आपकी लगन, तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों के बीचों बीच इस कदर धैर्य और धैर्यपूर्वक, साहित्य निर्वाह करना सचमुच आश्चर्यजनक है। बस अंत में इतना ही कहूंगा कि ''आश्वस्त'' निरंतर प्रगति के सोपान तय कर रही है, यह देख कर खुशी हुई। मेरी शुभकामनाएं स्वीकारें।

आपका अपना
अमित कुमार लाडी
अध्यक्ष, ''आलराउण्ड अकादमी''
192, स्ट्रीट नं. 2, गुरुनानक कॉलोनी
फरीदकोट–151203 (पंजाब)
मोबा. 98157 75626

मधुर नज्मी की दो ग़ज़लें :–

(1)

देखता हूँ मैं जिसको है वही मुसीबत में
कट रही है अब सबकी ज़िन्दगी मुसीबत में
'गोपियों' के चेहरे पर हैं उदासियाँ छाई
आजकल है 'कान्हा' की बाँसुरी मुसीबत में
बे–अदब अदीबों की साज़िशों के कारण ही
काव्य–मंच की कविता घिर गयी मुसीबत में
हम फ़रेब खाकर भी सब्र करके जी लेंगे
ज़िन्दगी न आ जाये आपकी मुसीबत में
पापियों के पापों को ओ रही है सदियों से
ग़म किये ज़माने का है नहीं मुसीबत में
रहज़नी का ख़ौफ़ इनको अब सताता रहता है
रहबरों की है जैसे रहबरी मुसीबत में
हर तरफ़ फ़ज़ाओं में ज़हर घुल गये हैं अब
ज़िन्दगी हर इक शय की आ यगी मुसीबत में
सच की आबरु रखना अब बहुत ही मुश्किल है
आजकल है मुंसिफ़ की मुंसिफ़ी मुसीबत में
ऐ 'मधुर'! क़लमवाले रौश्नी बिखेरेंगे
लाख इनको ले आये तीरगी मुसीबत में।

(2)

मुफ़लिसों में ग़म से लड़ने की अदा मौजूद है
ज़िन्दगी जीते हैं कैसे यह कला मौजूद है
नस्लें–नौ में आज भी इक हौंसला मौजूद है
दिल में उम्मीदों का एक रोशन दिया मौजूद है
मुश्किलों के वक़्त आखिर काम आता है वही
पत्थरों के शहर में जो आईना मौजूद है।
घर से निकले तो सही महसूस ये हो जायेगा
हर क़दम पर हादसा ही हादसा मौजूद है
इस ज़मीं के ज़र्रे–ज़र्रे से ये आती है सदा
रब की रहमत का अभी तक सिलसिला मौजूद है
जितना सुलझाओगे इसको ये उलझती जायेगी
ज़िन्दगी में हर क़दम पर मसला मौजूद है
मंज़िलें मेरे क़दम अब चूम लेंगी देखना
साथ मेरे हम सफ़र है रास्ता मौजूद है।
मेरी हस्ती को न छू पायेगी कोई तश्नगी
मेरे दिल में एक दरिया दर्द का मौजूद है।
लाख दुनिया ज़ालिमों की ज़द में है लेकिन अभी
बे–सहारों के लिये भी आसरा मौजूद है
ऐ 'मधुर'! आओ बहारे–ज़िन्दगी के लो मज़े
साग़रों–मय है सलामत, मैकदा मौजूद है।

महानिदेशक–काव्यमुखी साहित्य अकादमी
गोहाना मुहम्मदाबाद–276403, जिला–मऊ (उ.प्र.)
मोबा. 9369973494

'स्वास्थ्य धन'

❊ हमारे रोगों का मूल कारण प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करना है। जैसे देर से सोना, देर से उठना, शारीरिक परिश्रम ना करना, अप्राकृतिक भोजन खाना, आपस में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, अहंकार, क्रोध, कपट, झूठ, निर्दयता, बेईमानी, लोभ, तनाव, लालच और संसार के प्रलोभनों में फंसना।

❊ धर्म, अर्थ और मोक्ष का सर्वोत्तम आधार है व्यक्ति का स्वास्थ्य। रूप, गुण, धन-सम्पत्ति, विद्या, बुद्धि, मान-सम्मान, अच्छी नौकरी आदि सभी कुछा विद्यमान हो- यदि स्वास्थ्य न हो तो व्यक्ति किसी का उपयोग नहीं कर सकता। इसलिए शरीर का स्वस्थ रहना तथा इस शरीर की रक्षा करना अति आवश्यक है।

❊ किसी को खाने अथवा पीने के लिये केवल एक ही बार पूछने का नियम बनायें, विवश कदापि ना करें। ना ही किसी के बार-बार आग्रह करने पर अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई वस्तु खायें या पीयें बल्कि विनम्रता से मना कर दें।

❊ स्वस्थ और चुस्त बने रहने के लिए प्रातः जल्दी उठकर वायु-सेवन के लिये लम्बी सैर करें (कम से कम 30 मिनट) तेज (सच्ची) भूख लगने पर खूब अच्छी तरह चबा-चबाकर भोजन करें।

❊ खुशी जैसी खुराक नहीं। क्रोध, चिन्ता, शोक और ईर्ष्या- ये स्वास्थ्य के साथ-साथ सौन्दर्य का भी नाश करते है अतः इनसे बचना चाहिये।

❊ कोई पदार्थ यदि बहुत स्वादिष्ट और गुणकारी हो तो भी उसे अपनी पाचनशक्ति के अनुसार, अनुकूल मात्रा में ही खाना चाहिए। अति करने पर गुणकारी पदार्थ भी हानिकारक हो जाता है। कम खाना और गम खाना-स्वास्थ्य रक्षा करने वाले है।

❊ सब्जियों को कच्चा अथवा कम पकाकर इस्तेमाल करना उत्तम है। अधिक पकाने से विटामिन नष्ट हो जाते है। सब्जियों को काटने से पहले धोयें ना कि बाद में। अंकुरित दालों का उपयोग बहुत लाभकारी है। मौसम की कच्ची व ताजी सब्जियों का उपयोग ज्यादा मात्रा में करें और अपनी जीवन शक्ति में वृद्धि करें। यह खून को साफ व पतला करती है। जमें हुए मल को बाहर निकालती है।

❊ भोजन के साथ पानी का उपयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि इससे पाचक रस पतले पड़ जाते हैं। भोजन से आधा घंटा पहले और डेढ़ घंटा बाद पानी पीना लाभकारी है। पानी, ज्यूस अथवा कोई भी पेय घूंट-घूंट करके पीना चाहिये ताकि मुँह में लार मिल जाये। बिना लार के भोजन व पेय पच नहीं सकते।

❊ आहार का नियंत्रण बहुत आवश्यक है। न्यूनतम नमक, न्यूनतम चीनी, न्यूनतम मैदा तथा कम से कम चिकनाई का इस्तेमाल करना चाहिए। फलों के ज्यूस की अपेक्षा मौसम के फल खाना अधिक लाभदायक है।

❊ शरीर एवं मन को सुदृढ़ बनाने में व्यायाम महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

❊ गहरी एवं संतुलित नींद के लिये मन में शान्ति, सुरक्षा एवं संतोष के विचारों को प्रधानता देनी चाहिये। सकारात्मक विचार तन और मन को स्वस्थ रखने में कारगर सिद्ध होते हैं।

❊ आवश्यकता महसूस होने पर पानी अवश्य पीयें। शरीर में पानी की कमी (Dehydration) अनेक रोगों को जन्म देती है। घर से बाहर जाते समय पानी की बोतल अवश्य साथ रखें।

❊ शरीर को शुद्ध तथा पाचनशक्ति को मजबूत बनाने में उपवास का महत्वपूर्ण योगदान है। बहुत से शारीरिक एवं मानसिक रोग उपवास से ठीक हो जाते हैं। यह आत्मविश्वास एवं आत्मनियंत्रण को बढ़ाता है।

जी.आर.एस.यादव भाई
28, प्रधानमंत्री सचिवालय
अपार्टमेन्ट्स विकासपुरी, नई दिल्ली 110018

शान्ति स्वरुप बौद्ध(सम्यक प्रकाशन, दिल्ली)
एक युग का अवसान 06 जून 2020
आश्वस्त परिवार की ओर से विनम्र आदरांजलि

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिविजन 204/2018-2020 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक पिंकी सत्यप्रेमी ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से
मालवा ग्राफिक्स, 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734-4000030 से मुदित एवं
20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734-2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार